मूल्य : आठ रुपये (8·00)

पहला संस्करण 1976,
AKSHAT (Novel), by Shiv Sagar Mishra

अक्षत

शिवसागर मिश्र

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

एक

राजदेव को लगा, जैसे वे गहरी नींद से जागने की कोशिश कर रहे हों। लेकिन, वे अपनी आंखें नहीं खोल पा रहे हैं। लेटे-लेटे ही उन्होंने अपने-आपको भयंकर तन्द्रा से मुक्त करने का चेतन प्रयत्न किया। इस क्रम में उन्हें आभास हुआ कि वे कहीं ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर पड़े हुए हैं। उनका दाहिना हाथ अनायास ही अगल-बगल की ज़मीन को टटोलने लगा कि तभी उनकी उंगलियाँ से किसी झाड़ की कंटीली नोकें छू गईं। उन्होंने अपने हाथ को तेजी से झटक कर खींचने के उद्यम में, ऊपर की ओर उठाया तो सचमुच ही कई कांटे उनकी उंगलियों में चुभ गये। वे हल्की-सी चीख मारकर चारों ओर देखने लगे। काफी देर तक देखते रहने के बाद भी घुप्प अंधेरे के सिवा उन्हें कुछ नज़र नहीं आया। उन्होंने महसूस किया कि उनके शरीर का निचला हिस्सा किसी भारी चट्टान के नीचे दब गया है।

राजदेव याद नहीं कर पाये कि वे कहां हैं और जहां कहीं भी हैं, वहां कैसे आ पहुंचे। दिमाग पर बार-बार ज़ोर देने के बावजूद कोई नतीजा नहीं निकला। उन्होंने उठकर बैठने की कोशिश की तो लगा कि दाहिने पांव का घुटना और रीढ़ की हड्डी का निचला हिस्सा टूट जायगा। निराश होकर वे फिर शवासन की मुद्रा में लेटे रहे। उन्हें लगा कि वे मर चुके हैं या मरते जा रहे हैं। 'मैं कौन हूं?'''राजदेव ही तो—ललिता का पति?'—ज्यों ही यह प्रश्न राजदेव के दिमाग में आया, त्यों ही उन्हें विश्वास हो गया कि वे अभी मरे नहीं हैं, किसी दुर्घटना के शिकार हो गये हैं।

उन्होंने एक बार फिर अपने आस-पास की चीज़ों को देखने का प्रयास किया। वे हर बिन्दु पर देर-देर तक आंखें गड़ाये देखते रहे। अन्धकार इतना घना था कि काफी देर तक वे आस-पास की चीजों की छाया तक नहीं देख सके। अचानक उन्हें शंका हुई कि कहीं उनकी आंखों की रोशनी तो नहीं चली गयी! यह विचार आते ही राजदेव के दिमाग पर ज़ोर का झटका लगा। यह अनुभूति मृत्यु से भी भयंकर थी। उनकी पूरी देह सिहर उठी। उन्हें मालूम था कि कंटीले झाड़ किधर हैं। भयातुर होकर उन्होंने अपने दाहिने हाथ को

मुट्ठियों में कंटीले झाड़ों को जोर से जकड़ लिया। ऐसा करते ही उनके मुंह से जोर की चीख निकल गयी। बंधी हुई मुट्ठी अपनी आंखों के पास लाकर उन्होंने खोल दी। चेहरे पर कुछ पत्तियों और कांटों के साथ-साथ गरम रक्त का स्पर्श हुआ, जिसे पोंछने के लिए ज्यो ही उन्होंने दाहिनी हथेली को आखों के ऊपर किया कि कलाई में बंधी घडी की तारीख, रेडियम के चलते, चमक उठी। प्रसन्नता के मारे वे अपनी परवशता, हथेली की चुभन, घुटनों का दर्द और आसन्न मृत्यु का भय भूल गये। आंखें सही-सलामत होने का एहसास होते ही उन्होंने चारों तरफ ध्यान लगाकर देखा। अन्धकार मे डूबा हुआ वातावरण काली लिपी-पुती असीम तस्वीर की तरह दिखने लगा।

राजदेव पूरे होश में आ गये थे। उन्होंने समझ लिया कि वे किसी वियावान जंगल मे घायल, मरणासन्न पड़े हैं।

'घायल ? मरणासन्न ? यह सब कैसे हुआ ? फिर यहा कैसे आ पहुचा ?··· क्या समय होगा ?'···

राजदेव ने घड़ी देखी। काफी देर तक देखते रहने के बाद घड़ी को कान से *लगाया और फिर देखा, उस समय रात के तीन बज रहे थे। उन्होने* अपने दोनों पांवो को हिलाकर अन्दाजा लेना चाहा कि चट्टान का वजन क्या है। बाया पांव आसानी से ऊपर उठ गया। लेकिन, दाया पांव हिलकर जमीन पर ही रह गया···अत्यधिक तेज टीस घुटने से उठकर, जाघ को फाड़ती हुई, कलेजे के ऊपर तक निकल गई। 'इसका अर्थ यह हुआ कि पाव के ऊपर कोई चट्टान नहीं है, बल्कि शायद घुटने की हड्डी टूट गई है।'···वे निष्क्रिय होकर पड़े रहे। दिमाग पर जोर देने से पहचान की छिन्न-भिन्न कड़ियां जुड़ने लगीं।

राजदेव के मानस-पटल पर तस्वीरें उभरने लगीं।···वे विमान से जापान की यात्रा पर जा रहे थे। जीवन की यही साध बाकी थी। जब उन्हे जापान सरकार का निमन्त्रण मिला और पासपोर्ट भी बन गया, तब भी उन्हे विश्वास नहीं हुआ कि वे जापान जा सकेंगे।

राजदेव विभिन्न रूपों मे, विभिन्न पदो पर काम करते रहे थे। ऐसे अनेकानेक अवसर आए, जब उन्हें विदेश यात्रा की योजना बनानी पड़ी। लेकिन, कोई योजना क्रियान्वित नही हो सकी। उन्होंने जहां कही भी, जिस रूप में भी, काम किया, जी-जान लगाकर, निष्ठापूर्वक किया। सामान्य प्रतिभा भी निष्ठा के योग से असामान्य बन जाती है। राजदेव को सफलता पर सफलता और ख्याति पर ख्याति मिलती गई। वे घोर कष्ट और संघर्ष के बावजूद

पदोन्नति करते गए। निदान, बहुत-से सहकर्मी, सहयोगी पीछे छूट गए। राजदेव लोकप्रिय और यशस्वी होने के साथ-साथ ऐसे सहयोगियों की ईर्ष्या के कोपभाजन भी बनते रहे। तिकड़म और छल-छद्म करने की न तो उनमें कभी रुचि पैदा हुई और न ही इसके लिए उन्हें फुरसत थी। नतीजा यह होता कि कई बार राजदेव को विफलता-जनित घोर निराशा भी झेलनी पड़ी। विदेश की यात्रा के समय भी बारम्बार प्रतिद्वन्द्वियों की जीत हुई और राजदेव की योजना धरी की धरी रह गई थी।

इस बार राजदेव की इस दौड़ में कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। फिर भी वे अतीत के अनुभवों से त्रस्त थे। यही कारण था कि ललिता के अस्वस्थ रहने पर भी, जब यात्रा करने का अवसर आ ही गया, तब वे भारी मन से हवाई अड्डे चल पड़े। वे जानते थे कि दुबारा ऐसा अवसर हाथ लगने को नहीं है। ललिता ने उन्हें जाने से रोका भी नहीं। कोई ऐसी बात भी उसने नहीं की, जिससे विरोध या व्यंग्य का आभास हो।

ललिता के व्यंग्य भरे वाक्यों से राजदेव तिलमिला उठते थे। ललिता के व्यंग्य में हमेशा यह ध्वनि होती कि वे उससे ऊबे हुए हैं, कि वे उसे नहीं चाहते, कि वे उससे मुक्त होना चाहते हैं, कि उन्हे उसके सुख-दुख से कोई वास्ता नहीं है, कि वे उसके अस्तित्व को कोई महत्ता नहीं देते, कि उनकी नजर में उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है…।

इस बार जब राजदेव विदा लेने के लिए अपनी रुग्णा पत्नी ललिता के बिस्तर के पास खड़े हुए, तब ललिता उन्हें देखती रही—गुमसुम। उसके चेहरे की हलकी झुर्रियां कुछ अधिक गहरी हो उठीं। लेकिन, उसकी आंखों और होठों पर असीम आसक्ति से उत्पन्न वेदना मुस्कराहट के रूप में कांपने लगी थी। ललिता ने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाया। राजदेव आशय समझ गये। उन्होंने आहिस्ते से अपनी हथेली में ललिता का हाथ ले लिया। ललिता इतना ही बोल सकी— "मेरी चिन्ता न करना। मैं ठीक हूं। चिट्ठी लिखते रहना। वही मेरे लिए दवा होगी।"

प्रत्युत्तर मे राजदेव कुछ भी नहीं बोल सके। चुपचाप अपनी पत्नी को देखते रहे। उनके मन के किसी कोने में बहुत-से भाव उमड़ आए। मन में आया कि यात्रा स्थगित कर दें। यदि यह सम्भव नहीं हो तो रद्द ही कर दे। किन्तु, वे कुछ भी नहीं कर पाए। उनसे यह भी नहीं हो सका कि वे अपने मन के विषाद और वेदना की तीव्रता को शब्दों में बांधकर ललिता के सामने रख

दें। क्योंकि उन्हें लगा, जैसे उनके ऐसा करते ही ललिता का व्यंग्य वाण छूट पड़ेगा, जैसे ललिता के धीरज का बांध टूट पड़ेगा। तब उनकी मनःशांति तिनके की तरह जल-प्लावन में डूब जायेगी।

अहम् की यह अदृश्य दीवार न जाने उन दोनों के बीच कब खड़ी हो गई थी कि वह टूटने या ढहने की बजाय दिन ब दिन सख्त और अभेद्य बनती चली गई। दो के बीच, आपसी सम्बन्ध में, आशंका की गाठ सहजता को समाप्त कर देती है। जो सहज नही है, वह सुन्दर भी नही है। सौन्दर्य के अभाव में सम्बन्ध शुष्क और कृत्रिम हो जाता है। कृत्रिमता से ऊब और खीझ पैदा होती है। सीधी, सरल, सहज जिन्दगी गाठो में पड़कर कुण्ठित हो जाती है। फिर, दो हमेशा दो बने रहते हैं, एक नही हो पाते। दोनों के बीच की अनास्था अहम का रूप ले लेती है।

राजदेव के लिए यह स्थिति असह्य थी। फिर भी वे इसी स्थिति को जीवन भर जीते रहे। वे कभी-कभी इस बात के लिए तरस जाते कि कोई उनसे सहज स्नेह से बात करे, उनकी व्यथा-कथा सुने और उन्हे प्रेम से आप्लावित कर दे। परिवार की हालत यह थी कि अतीत मे अभाव का आतंक हमेशा घेरे रहा और बाद में आपस की गलतफहमी जीवन को कुरेदने लगी। उस पर से तुर्रा यह कि बाहर जीवन-पर्यन्त विरोध-अवरोध झेलते-झेलते राजदेव तंग आ गये थे। फिर भी, वे मरना नही चाहते थे। अब उन्हे ललिता की और ललिता को उनकी आवश्यकता थी।

राजदेव को याद आया, विमान मे बगल वाली सीटों मे से शुरू की दो सीटों पर नव-दम्पत्ति बैठे हुए थे। दोनों की जोड़ी देखने योग्य थी। तरुणी आसक्ति और आमन्त्रण भरी बड़ी-बड़ी आंखों से पति के चेहरे को निहारे जा रही थी। उसका बाया हाथ कुर्सी के चौड़े हत्थे से गुजर कर पति की जांघों पर टिका हुआ था। उसकी उंगलिया पति की जाघों पर थिरक रही थी। जैसे वह मन ही मन प्रेम-संगीत की कोई बेसुध करनेवाली पंक्ति को, अमुखर ही, स्वरबद्ध कर रही हो। युवक अपनी पत्नी की मादक आखों के स्पर्श को अनुभव कर कभी-कभी सिर घुमाकर उस ओर देख लेता। आखें मिलते ही दोनों की भाव-मुद्रा ऐसी हो जाती, जैसे वे एक-दूसरे से आबद्ध हुए बिना रह नही पाएंगे। ऐसा वे कर नहीं पाते तो युवक अपनी हथेली ऊपर की ओर उठाकर पत्नी की थिरकती हुई उंगलियों को मुट्ठी में जकड़ लेता। राजदेव कोशिश करके भी यह सरस दृश्य अनदेखा नही कर सके थे। यह क्रम कई

बार चलने के बाद युवती ने पूछा था, "क्या तुम इसी तरह जीवन भर मेरे बने रहोगे ?"

युवती ने बड़े धीमे से यह बात कही थी। लेकिन, राजदेव का ध्यान उसी ओर लगा था। यह वाक्य हथौड़े की तरह उनके मानस पर गिरकर झनझना उठा था !...

राजदेव जिस मुहल्ले में रहते थे, ललिता भी बिलकुल वहीं, उनके मकान के ठीक सामने, अपने बड़े भाई मुकेश के साथ रहती थी। अजीब संयोग कि राजदेव भी अपने बड़े भाई पुष्कर के साथ ही ठहरे हुए थे। ललिता बी०ए० की छात्रा थी और राजदेव एम० ए० अन्तिम वर्ष की परीक्षा दे रहे थे। इसलिए वे दिन भर, घर के सामने छोटे-से वटवृक्ष की छाव में बैठे पढ़ने-लिखने में तल्लीन रहा करते थे।

एक दिन वे इतिहास के पर्चे की तैयारी में, आंखें बन्द किए महत्त्वपूर्ण तिथियां मन ही मन रट रहे थे कि अचानक ही सुरीली आवाज़ कानों से उतर कर अन्तस्तल को झंकृत कर गई। उन्होंने महसूस किया कि यह आवाज़ वे बचपन से पहचानते हैं। आंखें खुलीं तो सोलह-सत्तरह वर्ष की एक छरहरी लडकी पास ही खड़ी पूछ रही थी, "आपके पास 'हिमालय' होगा ?"

राजदेव चकित-विस्मित-से उस युवती को देखते रह गए। वे समझ नहीं पाए कि युवती क्यों उनके सामने खड़ी है, कहां से आई और क्या कह रही है। बस उन्हें अर्थ मिला तो केवल यही कि यह आवाज़ जन्म-जन्मान्तर से जानी-पहचानी है। यह आवाज़ ऐसी है जिसका कोई अर्थ होता भी नहीं है। बीज मन्त्र की तरह नाभि-स्थल के नीचे सुपुप्त कुण्डलिनी को जगा देती है, जो तत्क्षण ही सहस्रार पर जा पहुंचने के लिए उद्वेलित हो उठती है। यह मिलन की आवाज़ है, जिस स्थिति पर पहुंचकर सभी इच्छाएं एकाकार होकर मोक्ष की अनुभूति उत्पन्न कर देती हैं। मोक्ष इसलिए कि इसी आवाज़ में तमाम इच्छाओं की परिणति है...अन्त है।

राजदेव को अन्दाज़ा भी नहीं हो सका कि वे कितनी देर तक विस्फारित आंखों से उस षोड़षी को देखते रह गए। उनको होश तब आया, जब उसने दूसरी बार अपने प्रश्न को स्पष्ट किया, " 'हिमालय' पत्रिका का इस महीने का अंक मेरे भइया को चाहिए। आपके पास होगा क्या ?"

"हां, आप...बैठिए। मैं अभी लेकर आता हूं।" राजदेव को लगा, वे चोरी करते पकड़े गए हैं। वे घबराकर उठ खड़े हुए और षोड़षी को

बगैर अपने कमरे की तरफ भागे। थोड़ी ही देर बाद जब वे 'हिमालय' का अंक लेकर लौटे, तब उन्हें अपनी भूल पर ग्लानि हुई। षोड़षी तब तक खड़ी ही थी। उन्होंने घबराहट के स्वर में पूछा, "अब तक आप खड़ी ही हैं ? बैठी क्यों नहीं ?" राजदेव को अपनी बेवकूफी का पता तब चला, जब उनकी दृष्टि वहां रखी एकमात्र कुर्सी पर पड़ी, जिस पर बैठे वे चार-पांच ग्रन्थों से नोट ले रहे थे, और जब कमरे की तरफ भागे, तब उन ग्रन्थों को वे उसी कुर्सी पर रखकर भागे थे। शरमाकर बोले, "अरे, आप बैठती भी तो कहां ! कुर्सी पर तो मैंने पुस्तकें लाद दी थी।" उनकी बातें सुनकर तरुणी खिलखिलाकर हंस पड़ी। राजदेव का रोम-रोम झंकृत हो उठा। जलतरंग की-सी खिलखिलाहट की लय पर वे तन-मन से न्योछावर हो गए।

लड़की ने ही उनकी तन्द्रा भंग की, "दीजिए न, मैं इसे जल्दी ही लौटा दूंगी। भैया से किसी ने कहा है कि इसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'ताजमहल' कविता का अनुवाद प्रकाशित हुआ है, जो बहुत ही सुन्दर है। आपने पढी है...?"

राजदेव तो सब कुछ भूल बैठे थे। अतीत की केवल एक ही वस्तु याद थी, और वह थी षोड़षी की आवाज, उसकी खिलखिलाहट, उसकी अनोखी भंगिमाएं, उसकी सहजता। षोडषी की कोमल रक्तिम हथेली अपनी ओर बढी देखकर राजदेव ने 'हिमालय' पत्रिका बढा दी। षोड़षी ने पत्रिका सहित दोनों हाथ जोड़े और तेजी के साथ वह सड़क के पार अपने मकान में चली गयी। राजदेव काफी देर तक उस ओर देखते रह गये। तरुणी चली गई थी, लेकिन, राजदेव के मानस में बार-बार एक ही छवि विभिन्न भंगिमाओं में उभर-उभर कर आती रही—कितनी सुन्दर छवि थी, हाथ जोडे, दाहिना पांव किंचित् आगे बढा हुआ, हंसता-चमकता मुखमण्डल झुका हुआ। और जब वह मुड़कर जा रही थी तो उसकी सुगढ, स्वच्छ ग्रीवा तथा कटि-प्रदेश की द्रुत लय देखते ही वह स्पन्दित हो उठे थे। बहुत देर तक उनकी स्थिति अजीब बनी रही। स्मरण मात्र से ही वे अपनी पहचान भूल-भूल जाते रहे।

कुर्सी पर बैठने के बाद उन्हें याद पडा कि वे षोड़षी का नाम तक पूछना भूल गये थे। उस दिन बहुत देर तक उन्होंने इतिहास की महत्त्वपूर्ण तिथियों को याद करने का प्रयत्न किया। बार-बार वे सिर को झटका देते रहे ताकि षोड़षी की छवि दिन-दिमाग से छिटक कर दूर जा गिरे। लेकिन, जितने जोर

से वे ऐसा प्रयत्न करते, उतनी ही तीव्रता से षोड़षी की सम्पूर्ण छवि उनके दिल में उतरती चली गई।

उस दिन वे रात भर सोचते कल्पना में ऊब-चूभ करते रहे। अपने-आप से प्रश्न करते रहे। 'क्या यही प्रेम है ? क्या यही नारी के रूप की माया है ? यदि यह माया है तो इसमे प्रच्छन्नता होनी चाहिए थी, इससे भ्रम का उद्रेक होना चाहिए था। ऐसा कुछ तो हुआ नही। अरूप स्वर की साक्षात् सौन्दर्य लहरी मे डूब-डूब जाने की इच्छा अस्तित्व को अनस्तित्व मे तिरोहित करती जा रही है। कुछेक क्षणो की भाव-समाधि जन्म-जन्मान्तर की पहचान दे गई। कुछ पाने की इच्छा नहीं हुई, बल्कि सब कुछ समर्पित कर देने को मन लालयित हो उठा है।'

राजदेव किसी निष्कर्ष पर नही पहुच सके। वे पहुंचना चाहते भी नहीं थे। षोड़षी उनके चेतन मे ही नही, उप-चेतन और अचेतन में भी घर कर गयी थी। ध्यान मे रूप उभरने लगता तो खिलखिलाहट की लहरें प्रतिविम्ब को खण्डित कर देती। आकार को समझने का प्रयत्न करते तो, स्वर के संगीत में चेतना मूर्छित हो जाती। यह ऐसा मिलन सिद्ध हुआ, जिसमें अथ-इति का विराट् विवरण समाहित होकर रह गया।

उस दिन से राजदेव दो कुर्सियां लेकर बैठने लगे। उन्हें विश्वास था कि षोड़षी फिर आयेगी। वे रोज प्रतीक्षा करते। आंखें पुस्तको के पृष्ठो पर लगी रहतीं और कान सामने से गुजरती हुई सड़क की ओर लगे रहते। कई रोज बीत गये। राजदेव ने इतिहास का अंतिम पर्चा भी दे दिया, कालेज की पढ़ाई से उन्हे छुट्टी भी मिल गयी, फिर भी वे, अवकाश के दिनों में, वटवृक्ष के नीचे कुर्सियां लेकर बैठते ही रहे, इस आशा मे कि वह षोडषी अवश्य आयेगी। महीने भर प्रतीक्षा करने के बावजूद षोड़षी वहा नहीं आई। राजदेव को चिन्ता हुई; क्योंकि वह खिड़कियो या बरामदे मे नजर भी नहीं आ रही थी। उसकी आवाज की गूज तो राजदेव के तन-मन में व्याप्त थी, लेकिन, वे उस जानी-पहचानी आवाज को कानों से सुनने को आतुर थे। 'क्या वह षोडषी कही चली गई ? या बीमार तो नही हो गई ? कैसे मालूम किया जाय कि उसका हाल क्या है ?' उसके भाई से वे परिचित भी नही थे। मुहल्ले मे वे लोग नये-नये आये थे। अकारण ही मेल-जोल बढ़ा लेना राजदेव की रुचि के विपरीत था। बचपन से ही उनका स्वाभिमान अहम् की सीमा को पार कर गया था। आज उन्हें अपने स्वभाव पर क्रोध आ रहा था।

राजदेव ने इतना मालूम कर लिया था कि सामने वाले उस मकान में कोई डिप्टी कलक्टर रहते हैं। उन्होंने अनुमान लगा लिया था कि कलक्टर साहब ही उस तरुणी के बड़े भाई होंगे। बरामदे पर या खिड़कियों में एक नारी की छवि कभी-कभी नजर आ जाती, जिसे राजदेव ने मन ही मन भाभी बना लिया।

कलक्टर साहब को बाहर आते-जाते राजदेव ने कई बार देखा। उनकी इच्छा हुई कि पुकारकर पूछें, 'कहिए हुजूर, आपकी बहन कहां गायब हो गयी? मेरी पत्रिका आप नहीं लौटायेंगे क्या?'

राजदेव इसी ऊहापोह में पड़े थे कि एक दिन डिप्टी कलक्टर साहब से भेंट हो गयी। राजदेव मछुआ टोली तिनमुहानी पर, महंगू मांसवाले के पास, पान की दुकान पर खड़े थे कि सामने लगे आईने पर नजर ठहर गयी। पीछे से डिप्टी कलक्टर साहब चले आ रहे थे। राजदेव मुड़कर उनकी ओर मुस्कराकर देखने लगे। आगन्तुक व्यक्ति ने हाथ जोड़ते हुए कहा, "मेरा नाम मुकेश है।"

राजदेव झेंप गए। उम्र में छोटा होने के नाते पहले उन्हें ही हाथ जोड़ने चाहिए थे। वे सकपकाते हुए बोले, "मेरा नाम राजदेव। आइए पान खाइए।"

"धन्यवाद! मैं तो दूर से ही आपको देखकर पहचान गया। बहुत दिनों से मिलने की इच्छा थी। क्या करें, कोई न कोई समस्या घेरे ही रहती है, जिसके चलते फुर्सत नहीं मिल पाती। आपसे 'हिमालय' का एक अंक ललिता ले आयी थी। ललिता मेरी बहन है। क्षमा कीजिएगा, उसे समय पर लौटाया नहीं जा सका। ललिता की ज़िद थी कि वह स्वयं आपको वापस करेगी।"

"कोई बात नहीं। जब तक जी चाहे, रखिए।"—राजदेव ने कह तो दिया, किन्तु मन ही मन वे पुलकित हो उठे। उन्हें अपनी बेचैनी का आधार मिल गया।

मुकेश ने पान चबाते हुए कहा, "मैं उसे आद्योपांत पढ़ चुका हूं। बात यह हुई कि ललिता अचानक बहुत अस्वस्थ हो गयी थी।"

राजदेव को लगा, जैसे उन्हें चक्कर आ जायगा। उनके हृदय की धड़कन बढ़ गयी। कुछ पूछना चाहते थे, लेकिन, मुंह की बात मुंह में ही रह गयी। कंठ सूख गया। तरह-तरह की आशंकाएं दिमाग में चक्कर काटने लगीं। आखिर, बड़ी हिम्मत करके, उन्होंने अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रखते हुए पूछा, "क्या हुआ उन्हें? अब कैसी हैं? कोई गम्भीर बात तो नहीं है? क्या

अभी···?" राजदेव अचानक चुप हो गये। उन्हें महसूस हुआ कि वे जरूरत से ज्यादा दिलचस्पी ले रहे हैं। मुकेश बुरा मान सकते हैं।

मुकेश ने हंसते हुए उत्तर दिया, "टाइफायड हो गया था। शुरू में रोग का निदान नहीं हो सका। उलझन बढ़ती गयी। बाद में निदान होने पर सही इलाज शुरू हुआ। लेकिन, आरम्भ में गलत दवा करने के कारण ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि अभी वह एक डेढ़ हफ्ते चल-फिर नहीं पायेगी। बहुत कमजोर हो गयी है। आइए न कभी। तीन-चार दिन पहले मैं स्वयं आकर आपकी पत्रिका दे आना चाहता था। लेकिन, ललिता ने कहा, 'जो चीज वह लाई है, उसे लौटाने की जिम्मेवारी भी उसी की है।'"

"पत्रिका लौटाना कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। मैं···मैं···हो सका··· तो आज ही ललिता जी को देखने आऊंगा।"

अंधा चाहे दोनों आंखें। राजदेव तो चाहते ही थे कि ललिता पत्रिका कभी न लौटाये। आने-जाने का बहाना बना रहे। राजदेव की इच्छा हुई कि अभी तत्काल ही मुकेश के साथ चलकर ललिता को देख आयें। लेकिन, आईने में ही राजदेव ने देख लिया था कि मुकेश अपने घर की तरफ से ही चले आ रहे हैं। इसलिए हो सकता है कि उनका कार्यक्रम कहीं बाहर जाने का हो। सही स्थिति मालूम करने के विचार से राजदेव ने अपने भीतर की तीव्रतम बेचैनी पर नियन्त्रण रखते हुए कहा, "हो सका तो आज ही किसी समय आऊंगा। ललिता जी की बीमारी की बात सुनकर बहुत दुःख हुआ। आप तो परेशान हो गये होंगे। मेरे लायक कोई सेवा हो तो अवश्य बताइएगा। यह डाक्टर भी अजीब होते हैं। पूरी जांच-पड़ताल किये बगैर इलाज शुरू कर देते हैं। दरअसल पटना में बहुत कम डाक्टर ऐसे हैं, जिनको अपने पेशे के प्रति ईमानदारी हो। वे अस्पतालों में नौकरी केवल इसीलिए करते हैं ताकि अपनी निजी क्लिनिक के लिए मरीजों को फांस सकें। इन्हें बस केवल पैसा चाहिए···।"

"नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है। डाक्टर अपने ही आदमी हैं। बल्कि एक तरह से सम्बन्धी हैं। शुरू में हलका-हलका बुखार आने लगा और खांसी भी रहने लगी। घरेलू डाक्टर के साथ एक कठिनाई यह जरूर होती है कि वह किसी रोग को गम्भीरतापूर्वक नहीं लेता। हमारे डाक्टर साहब ने सोचा मामूली खांसी-बुखार है। उन्हें जब रोग का पता लगा, तब वे बहुत दुःखी हुए। आपने भी उनका नाम सुना होगा—डा० विमलनाथ।"

"हा-हां, उन्हे कौन नही जानता ! तो यह भूल उनसे हो गयी ! आश्चर्य है ! " अभी आप घर लौट रहे है या कही बाहर जाने का कार्यक्रम है ।" यदि आप घर लौट रहे हों, तो मैं भी वापस चला चलता हूं ।"

"जी नही ।" मुकेश ने सकोच से कहा, "मुरादपुर तक जा रहा हूं। एक-डेढ घण्टे मे लौट आऊंगा । आप घर पर ही रहेंगे न ?"

सच तो यह था कि राजदेव का मन डेरे पर नही लगा तो पान की दूकान तक चले आये थे । यहा से उन्हे सीधे डेरे पर ही लौटना था लेकिन, कहने को कह गये—"मैं विश्वविद्यालय जा रहा हूं । आपके लौटने से पहले ही अपने घर पहुच चुका होऊंगा ।" घर की ओर वापस लौटने की बजाय राजदेव लोअर रोड की तरफ बढ़ गये । वे मन ही मन यह सोचकर हैरान थे कि ख्वामख्वाह झूठ क्यों बोल गये ! यदि कह देते कि पान खाकर वापस घर लौट जायेंगे, तो इसमें उनकी क्या मानहानि हो जाती ?" वस्तुत: उनके मन मे चोर था, जिसके पकड़े जाने का डर उन्हे सता रहा था ।

राजदेव पहली भेंट मे ही ललिता को अपना हृदय दे चुके थे। किसी के प्रति पूर्ण समर्पण के भाव से बेसुध-बेचैन हो जाना यदि प्रेम है, तो वे ललिता के प्रेम-पाश में बंध चुके थे । यदि किसी के अभाव में जीवन निरर्थक हो जाय, यदि किसी के आकर्षण मे जीवन का अर्थ मिल जाय, यदि किसी का केवल कोई अन्दाज तन-मन को सौन्दर्यानुभूति से उद्वेलित कर दे और यदि किसी के अस्तित्व में अपना विलय होते देखकर जीवन की समग्रता का एहसास हो तो समझना चाहिए कि यह शुद्ध और सहज प्रेम है ।

राजदेव अपने मन का भाव मुकेश से छुपाना चाहते थे । वे नही चाहते थे कि ललिता के प्रति उनकी व्यग्रता मुकेश पर प्रकट हो जाय। उन्हें अपनी चिन्ता नहीं थी । यह दुराव-छिपाव उन्होंने ललिता के हित में किया था। " जो भी हो, राजदेव उत्साह से भर उठे । उनकी प्रसन्नता की सीमा नही थी । ललिता से मिलने की कल्पना उनमे रोमांच भर देती ।

यही सब सोचते हुए राजदेव पटना कालेज के समीप जा पहुंचे । उन दिनों पटना कालेज के मुख्य दरवाजे से सामने पिन्टू होटल हुआ करता था। पिन्टू होटल के भीतर चार-पांच छात्र चाय पी रहे थे। वे सब राजदेव के परिचित थे । उन लोगों के चक्कर मे कहीं वह फंस न जाएं—यह चिन्ता आते ही राजदेव उलटे पांव मछुआ टोली की ओर बढ चले ।

उनके पांव में पख लग गये थे । वे मन ही मन कथोपकथन रच रहे थे कि

किस प्रकार ललिता को देखते ही अपनी सहानुभूति प्रकट करेंगे। ललिता खिलखिलाकर हंस देगी। वे उसे परहेज रखने और अच्छे स्वास्थ्य से जीवन में होने वाले लाभ पर गम्भीरतापूर्वक प्रवचन देंगे। राजदेव के पास अच्छी-अच्छी पत्रिकाओं की कमी नहीं है। उनमें से चुनकर वे अच्छी-अच्छी पत्रिकाएं लेकर मिलने जाएंगे, ताकि आते-जाते रहने का सिलसिला बना रह सके। ललिता के लिए उन्हें थोड़े फल खरीद लेना चाहिए। बीमार के पास खाली हाथ क्यों जाएं? यह सोचकर उन्होंने सेब और बेदाना खरीद लिया।…

व्यग्रता और उत्साह के टकराव से उनकी विचार-शृंखला टूट-टूट जाती थी। ललिता के प्रति उनमें अजीब मोह पैदा हो गया था, जो प्रतिपल बढ़ता जा रहा था। राजदेव कभी-कभी मन ही मन आशंकित हो उठते कि तभी उनके मन के किसी कोने में बैठा हुआ कोई आदमी पूछ बैठा—'कल तक जिसे तुम जानते नहीं थे, उसके बारे में इतना तीव्र चिन्तन सिद्ध करता है कि तुम्हारी आसक्ति वासनाजनित है। ललिता के रक्तिम होठों ने तुम्हारी प्यास जगा दी है। उसकी सुकोमल सुदृढ़ देहयष्टि का लयबद्ध चांचल्य देखकर तुममें उन्माद जग पड़ा है। उसकी खिलखिलाहट ने तुम्हारे भीतर के पशु को चुनौती दी है।'

'छी-छी, ऐसी बात नहीं है। ऐसा हो नहीं सकता। मैं तो ललिता के रूप को, उसके आकार-प्रकार को भर आंख देख भी नहीं पाया। कदाचित् वह परिभाषा के अनुसार सुन्दर न भी हो। उसे तो लगा कि जन्म-जन्मान्तर से वे दोनों वाक्य और अर्थ की तरह सम्पृक्त हैं। 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'…कालिदास ने शिव और पार्वती के सम्बन्ध के बारे में जो कुछ लिखा, वैसा ही कुछ उसके साथ भी घटित हुआ है। इसमें वासना नहीं, रचना का विवेक हो सकता है। यहां निष्ठा है, लोभ नहीं। यहां मिट जाने की इच्छा है, मिटा देने की योजना नहीं…।'

"राजदेव! बारह बजे का स्टीमर पकड़ना है।"—अपने भाई पुष्कर से यह अप्रत्याशित वाक्य सुनकर राजदेव जैसे धड़ाम से धरती पर आ गिरे। अपने कल्पनालोक में राजदेव इस कदर उलझे हुए थे कि उन्हें पता भी नहीं चला और वे अपने डेरे पर पहुंच गये थे। उनके बड़े भाई पुष्कर परेशान चेहरा लिए पहले से ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

पुष्कर पटने में एस० डी० ओ० के पेशकार थे। उनके दो लड़के थे और तीन लड़कियां। दो लड़कियों का विवाह कर चुके थे, तीसरी का विवाह होना

था। बड़ा लड़का लालनारायण गांव के पास ही मिडिल स्कूल में पढ़ता था और छोटा लड़का प्रमोद पहली कक्षा में।

पुष्कर कंजूस आदमी थे। डेरे में गांव का नौकर था, जिसे वे स्वयं नापकर चावल-आटा दिया करते थे, ताकि रसोई का खर्च न बढ़े। राजदेव को पुष्कर की ओर से केवल भोजन मिलता था। उस भोजन का चावल, दाल, गेहूं, तेल, घी आदि घर से ही आता था। पुष्कर केवल साग-सब्जी खरीद दिया करते थे। राजदेव के कालेज का शुल्क आदि उनके पिता अलग से भेज दिया करते थे।

राजदेव के हाथ में फल का थैला देखकर पुष्कर की आंखें निकल आयीं। उन्होंने बड़े कर्कश स्वर में पूछा—"अरे, इतना फल क्यों खरीद लिया ?"

"जी'''यह'''एक मित्र ने मुझे खाने के लिए दिया है।"

"ओह्'''अच्छा ! जल्दी तैयार हो जाओ। घर से तार आया है। मां की हालत गम्भीर है। *शायद वे बचेंगी नहीं। चलो, अपना सामान सहेज लो।* जहाज-घाट चलना होगा। स्टीमर छूटने में आध-पौन घण्टा रह गया है।"

राजदेव को काटो तो खून नहीं। वे अपनी मां को सबसे अधिक प्यार करते थे। जब कभी वे मां से विदा लेकर शहर आते थे, पांच-छह रोज तक किसी काम में उनकी तबीयत नहीं लगती थी। पढ़ने-लिखने में मन का लगना तो दूर, उन्हें उनका कमरा तक काटने दौड़ता था। तब वे भागकर गंगा किनारे चले जाते थे। वहां घण्टों बैठे रहते। मां की प्यारी-प्यारी बातें उनके दिमाग में गूंजती रहतीं। उसी क्रम में मां का आदेश जब ध्वनित हो उठता—'जी लगाकर पढ़ना, मां-बाप का नाम उज्ज्वल करना', तब राजदेव भारी मन से डेरे की ओर लौट आते थे।

गांव में राजदेव के लिए दो ही आकर्षण थे, मां और भतीजा प्रमोद। दो छोटी बहनें भी थीं, जो राजदेव से, लिहाज के मारे, दूर-दूर रहती थीं। वे बुलाने पर आतीं। राजदेव के प्रश्नों के उत्तर हां-हूं में देकर मौका पाते ही भाग जातीं।

लालनारायण की रुचि पढ़ने-लिखने में बिल्कुल नहीं थी। दिन भर आम के बगीचों में घूमता रहता था और शाम होते ही रेलवे स्टेशन निकल जाता, जहां आस-पास के गांव के शोहदे चाय-पान-बीड़ी के लिए एकत्र हुआ करते थे। राजदेव के सबसे बड़े भाई पशुपतिनाथ सचमुच के भोलेनाथ थे। इण्टर पास करके घर जा बैठे। खेती-बाड़ी से उन्हें सख्त चिढ़ थी। नाटक, कीर्तन और गीत-

नाद में मस्त रहा करते थे। शादी के नौ साल बाद उनकी पत्नी परलोक सिधार गयीं। तब से हारमोनियम और ढोलक के सहारे वे जिन्दगी काट रहे थे। घर के झंझटों से वे कोसों दूर रहा करते थे।

भाई के मुह अचानक यह चिन्ताजनक समाचार सुनने को वे प्रस्तुत नहीं थे। अभी तो वे ऐसी अनजानी-बेपहचानी दुनिया में जा पहुचे थे, जहा दु:ख नही, चिन्ता नही, अलगाव-बिलगाव की बात नही। वहां तो स्वप्नवत् मनोहारी सौन्दर्य का विस्तीर्ण साम्राज्य था। कल्पना ही कल्पना थी, ऐसा आकर्षण था कि खिचते चले जाने की तमन्ना थी।

विधाता का विधान भी विचित्र होता है। कहां तो वे ललिता से मिलने की स्पन्दनपूर्ण कल्पना मे तरह-तरह के कथनोपकथन गढने मे लगे हुए थे, और कहां उन्हे घर जाने के लिए, धोती-कुर्ता जैसे आवश्यक सामान सहेजने मे जुट जाना पड़ा। कर्तव्य और प्रेम के बीच अनिवार्य संघर्ष की आशका ने ही मर्यादा जैसी कठोर मूल्यगत वस्तु का निर्माण किया है। कभी यह मर्यादा मनुष्य की कुण्ठा बन जाती है, तो कभी उसमें देवत्व उत्पन्न कर देती है।

दो-चार कपड़े लेकर राजदेव झटपट तैयार हो गये। रिक्शा आ चुका था। अजीब उदास-उदास नजरों से सड़क के उस पार वाले मकान को देखते हुए राजदेव रिक्शा पर जा बैठे। मन ही मन वे ललिता के पास जा पहुचते। सड़क पर आने-जाने वालों को राजदेव देख नही पा रहे थे। उन्हें इतना समय भी नही मिल पाया कि अपनी परवशता की सूचना मुकेश को दे सकें। राजदेव का मन खंडित सूत्रों को पकड़कर जोड़ने में लगा हुआ था। ललिता रोग-शय्या पर लेटी होगी। उसके भाई मुकेश लौट रहे होगे या लौटने वाले होंगे। निश्चय ही पान की दूकान पर हुई भेंट का जिक्र करते हुए मुकेश ललिता को सूचित करेंगे कि राजदेव मिलने आयेंगे। राजदेव मिलने जा नही सकेंगे। राजदेव तो अपने गांव जा रहे है। मालूम नहीं वहा उनके प्रारब्ध मे क्या लिखा है। न जाने वह कब तक गाव से लौटेंगे। तब तक ललिता की धारणा बन चुकी होगी कि राजदेव भरोसा करने योग्य व्यक्ति नही है।

दो

धारणा बनने-बिगड़ने की नौबत नहीं आई। राजदेव अपनी मां का श्राद्ध-संस्कार आदि समाप्त करके ही पटना लौटे। जिस समय वे अपने डेरे पर पहुंचे, मुकेश बरामदे पर खड़े देख रहे थे। रिक्शावाले को जल्दी-जल्दी पैसे देकर वे मुकेश के पास जा पहुंचे। राजदेव को देखते ही मुकेश ने कहा, "उस रोज़ आप ललिता को देखने नहीं आ सके। बाद में मुझे मालूम हुआ कि आपको अचानक ही गांव जाना पड़ा।"

"जी हां, उस दिन डेरे पर लौटते ही तार मिला कि मां की हालत गम्भीर है। जब हम लोग वहां पहुंचे, तब तक तो मां के पार्थिव शरीर की दाह-क्रिया भी हो चुकी थी। हम मां के दर्शन भी नहीं कर सके।"—इतना कहकर राजदेव खामोश हो गये। इसके आगे वे बोल नहीं पाए। मुकेश ने राजदेव का सिर मुड़ा देखकर ही सब कुछ भांप लिया था। उन्होंने सान्त्वना देने के लहजे में कहा, "मुझे यह दुःखद समाचार जानकर घोर कष्ट हुआ। मां अपने पुत्र की केवल जननी नहीं होती, वह तो मानवीय मूल्यों की साक्षात् सजीव प्रतिमा होती है। मनुष्य में सभी सद्गुणों का उद्रेक मां के सरल सान्निध्य में ही होता है। मां का स्थान कोई नहीं ले सकता। तभी तो गीता में स्वधर्म की उपमा मां से दी गयी है। लेकिन, मृत्यु एक सनातन सत्य है, जो व्यक्ति के जन्म के साथ ही प्रकट हो उठता है। क्या कीजिएगा! मां को जो कुछ देना होता है, अपने पुत्र के रूप में समाज को दे जाती है। तब पुत्र का यह दायित्व हो जाता है कि अपने सद्गुणों का विकास करके मां द्वारा प्रदत्त मानवीय मूल्यों को जगाए रखे।"

राजदेव मुकेश की सांत्वना भरी सारगर्भित बातें चुपचाप सुनते रहे। गांव में, जब वे मां की याद में फफक-फफककर रो पड़े थे, कई लोगों ने दिलासा के शब्द कहे थे। लेकिन, न जाने क्यों, मुकेश की बातें सुनकर उनके दुःख का बांध खिसकने लगा। राजदेव को मुकेश के अनुभूतिपूर्ण व्यक्तित्व के दर्शन भी हुए। राजदेव किसी प्रकार इतना ही कह पाये—

"हम लोग तीन भाई हैं। हमारी दो बहनें भी हैं⋯छोटी। चाचा का

परिवार अलग है। लेकिन, मां सबसे स्नेह रखती थीं। अपना हो या चचेरा··· सबको अपना बनाकर रखती रहीं। मुझे तो उनका असीम प्यार मिला। मां से मैं कुछ नहीं छिपाता था। अब तो मुझे लगता है कि संसार में···।" इसके आगे राजदेव का गला अवरुद्ध हो गया।

मुकेश आयु में राजदेव से छह-सात साल बड़े थे। उनमें दूर-दृष्टि और तीक्ष्ण बुद्धि थी। उन्होंने राजदेव के कन्धों पर हाथ रखकर किंचित् अपनी ओर खींच लिया और कहा—

"इस संसार में सब कुछ है। जिसकी जैसी वृत्ति है, जैसी इच्छा है, उसके अनुरूप वह साधन का संकलन कर लेता है। भाव का अभाव कभी नहीं होता, बशर्ते कि स्वार्थजनित परिवेश व्यक्ति पर हावी न हो जाए। आइए, भीतर चलकर बैठिए। थके-मादे आए हैं। गरम-गरम चाय पिलवाता हूं।"

मुकेश उसे खींचकर भीतर के कमरे में ले गए। भीतर के गलियारे में ले जाते हुए, एक कमरे के पास रुककर बोले—"इसी में ललिता बीमार पड़ी थी।" यह वाक्य सुनते ही राजदेव वहीं रुक गए। लगा, जैसे वे गिर जाएंगे। उन्होंने दीवार का सहारा ले लिया। मुकेश भी रुक गए। राजदेव का फक पड़ा चेहरा देखकर वे घबराहट से भर गए और बिल्कुल पास आकर पूछा—

"क्यों? तबीयत तो ठीक है?"

राजदेव तब तक संभल चुके थे। दीवार से अलग होकर बनावटी मुस्कराहट के साथ बोले—

"ठीक हूं।···आपने क्या कहा? ··ललिता जी हैं कहां?"

"वह गांव चली गई है। तीन-चार रोज में आ जाएगी। गांव की खुली हवा और शुद्ध खान-पान से उसके स्वास्थ्य में जल्दी सुधार आ जाएगा। इसीलिए भेज दिया है।"

"ओह···मैंने समझा कि ··दरअस्ल आपने अधूरी बात कहकर मुझे डरा दिया।"

मुकेश पल भर में सारी स्थिति भांप गए। खिलखिलाकर हंसते हुए बोले—

"अरे नहीं, ललिता को कुछ नहीं हुआ। उसे कुछ नहीं होगा। वह बहुत अच्छी लड़की है। उस रोज आप नहीं आए तो उसने बहुत पूछ-तांछ की और जब उसे आपके गांव जाने का कारण मालूम हुआ, वह बहुत दुखी हुई।"

"तो क्या आपने ललिता जी को···'हिमालय' पत्रिका की बात···।" राजदेव

बात पूरी नहीं कर पाए कि मुकेश ने कहा, "उस रोज़ हमारी-आपकी भेंट पान की दूकान पर हुई थी न, उसका जिक्र मैंने ललिता से कर दिया था और कहा था कि आप उसे देखने आएंगे। बाद में आपके नौकर से सारी सूचना मिली। ललिता उसके बाद दो-तीन रोज़ तक उदास रही। आमतौर पर वह बीमारी में भी हंसती रहती थी। आपके घर का समाचार सुनने के बाद तो वह हंसना जैसे भूल ही गई। बहुत सुशील लड़की है। किसी का दुःख उससे देखा नहीं जाता।"

राजदेव को यह बात बड़ी सुखद लगी। उन्होंने उसी दिन अनुभव किया कि अपनी समवेदना में वे अकेले नहीं हैं। ललिता कहीं न कहीं से उनके साथ हो गई है। मन के स्तर पर दोनों एक-दूसरे को पहचान गए हैं। दोनों की भाव-भूमि एक ही है। तभी तो प्रेम अलौकिक है, वह देवता का वरदान है, आत्मिक उन्मेष का सुगम माध्यम है। प्रेम का एक छोर जहां बाह्य सौन्दर्य के स्पर्श से तरंगित रहता है, वहीं दूसरा छोर आध्यात्मिक निस्सीमता को आबद्ध किए रहता है।

राजदेव लगभग रोज़ ही मुकेश से मिलने लगा। दोनों के बीच घण्टों किसी न किसी विषय पर चर्चा होती रहती। ललिता के लौटने के पूर्व ही मुकेश ने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि राजदेव और ललिता की जोड़ी अच्छी रहेगी।

एक दिन मुकेश को राजदेव का मन जानने का अवसर मिल गया। गांव की पारिवारिक बातें चल रही थीं। मुकेश ने कहा, "मैं भाइयों में सबसे छोटा हूं। दो भाई बड़े हैं। गांव में रहते हैं। चार साल हुए, पिता जी अचानक चल बसे। दस्त और उल्टियों की बीमारी हुई। तीसरे दिन ही उनका अन्तकाल आ गया। मैं घर पर ही था। मुझे बुलाकर उन्होंने एक ही बात कही कि मैं ललिता का ख़याल रखूं। पिता जी जानते थे कि उनके दोनों बड़े बेटे ललिता को बिना पढ़ाए-लिखाए ऐसे-वैसे घर में ब्याह देंगे।"

"अपने घर में सबसे योग्य व्यक्ति भी तो आप ही हैं।"—राजदेव ने मुकेश की प्रशंसा करने के विचार से कहा।

मुकेश कुछ देर चुप रहकर किंचित् दुःख भरे स्वर में बोले, "मात्र योग्यता से सामाजिक काम पूरा नहीं होता। संयुक्त परिवार है। मेरे दोनों भाई समझते हैं कि डिप्टी कलक्टर बहुत बड़ा हाकिम होता है—उसे पैसे की क्या कमी! वे लोग मुझसे बहुत अपेक्षा रखते हैं। जहां तक बन पड़ता है, उन लोगों की

सहायता करना भी है। लेकिन, मुझे मिलता ही कितना है ? अब ऊपर से ललिता के हाथ पीले करने हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि कैसे यह यज्ञ सम्पन्न होगा।"

"क्यों ? "ललिता जैसी लड़की के लिए दहेज की चिन्ता आप क्यों करते हैं ?"

"आपके जैसे ऊंचे विचार रखने वाले कितने लड़के आज के समाज में मिलेंगे ?"

"आप संख्या में क्यों जाते हैं ? यदि एक मैं हूं तो ललिता भी एक ही है।"—राजदेव अचानक बोल गए। बाद में उन्हें अर्थ का ज्ञान हुआ तो झेंप कर उन्होंने सिर नीचा कर लिया।

ललिता लौट आई। उसके घर में राजदेव का आना-जाना पहले ही शुरू हो गया था। इसलिए आगे भी इस आवागमन में कोई कठिनाई नहीं हुई।

कुछ दिनों तक राजदेव तभी आते, जब घर में मुकेश मौजूद होते थे। मुकेश के आग्रह पर उनकी पत्नी सुलेखा और बहन ललिता भी आकर बैठ जाती। बातचीत चलती रहती और ललिता तथा राजदेव एक-दूसरे को छिपी नजरों से देख लिया करते थे। नजरों-नजरों में ही जाना-पहचाना अमुखर कथनोपकथन सम्पन्न हो जाता। दोनों के होठों की मुस्कराहट में संयमित, मर्यादित आत्म-समर्पण के भाव थिरक जाते। ललिता लजाकर किसी न किसी बहाने से उठकर चली जाती। तब राजदेव का मन उचट जाता। पल भर बाद ही वह विचार करते तो लगता कि ललिता उनके बहुत समीप है। इतनी समीप, जिसे स्पर्श करने की आवश्यकता नहीं होती। स्पर्श का आनन्द सीमित संकुचित है। स्पर्श प्रेम का स्थूल रूप है। प्रेम का रूप तो सुगंध में साकार होता है। राजदेव सोचते और मगन हो जाते।

पहली बार जब दोनों अकेले में मिले, तब राजदेव ने अजीब प्रश्न कर दिया, "इधर मैं देखता हूं कि आप गुमसुम रहा करती हैं। आपकी खिलखिलाहट भी बन्द-सी हो गई है, ऐसा क्यों ?"

ललिता सिर झुकाए चुपचाप बैठी रही। काफी देर तक कमरे में खामोशी छाई रही। राजदेव को मालूम हो गया था कि मुकेश ललिता का विवाह उससे कर देना चाहते हैं। उसे यह भी मालूम था कि उसके पिता टाल-मटोल कर

रहे हैं। राजदेव ने अनुमान लगाया कि कदाचित् इसी बात से ललिता की भंगिमा मे यह परिवर्तन आया है। उसने दुबारा प्रश्न किया, "क्या आपकी तबियत पूरी तरह ठीक नही हो पाई है ?"

"ठीक हूं। तबीयत मे कोई खराबी नहीं है।"—यह कहकर ललिता ने राजदेव की ओर क्षण भर मुस्करा कर देखा और कहा, "एक स्थिति मे रहती आई थी, जहा जन्म लेते ही सबसे पहचान हो गई। वह सहज पहचान थी, जो करनी नही पड़ती है। बस, हो जाया करती है। लेकिन मैं लडकी हूं न। हम लोगों का जन्म एक बार तो होता नहीं। बार-बार होता है। और, यह बार-बार के जन्म मालूम नही सहज होते है या कृत्रिम। इतना मालूम है कि तब मजबूरन पहचान करनी पडती है, होती नहीं।"

राजदेव अवाक् देखता रहा। ललिता के इस रूप से वह आज पहली बार परिचित हुआ। आशय का आभास तो उसे मिल गया। लेकिन, उसके वाक्यों के अर्थ का विस्तार उसकी पकड़ में नही आया। वह बोला, "यह तो नही कहूंगा कि आप कविता क्यो कर रही हैं। किन्तु, इतना निवेदन अवश्य करूंगा कि मैंने जिस रूप मे आपको देखा है, उसे देखते ही पहचान गया था। इस सहज पहचान मे मुझे जीवन का अर्थ मिल गया। आपका वही रूप मेरे लिए सुन्दर है।"

"कौन-सा रूप ?"

"आपका हंसता, खिलखिलाता हुआ, सहज निश्छल रूप।"

"यह तो मानते होंगे कि सहजता मे सान्निध्य है, उसे 'आप' संबोधन के जरिए दूरी में क्यों बदल रहे है ? आपके अभिभावक जिस प्रकार की दूरी बरत रहे हैं, वही काफी है।"

राजदेव पल भर मे सब कुछ समझ गया। 'तो, ललिता को मालूम है कि उसके पिता ने विवाह के प्रस्ताव को एक तरह से अस्वीकृत कर दिया है। यह कारण इतना जबरदस्त नही है कि ललिता को अपने सहज स्वभाव में परिवर्तन करने की जरूरत पड़े। वह क्यों नही समझती कि प्रेम-बाण से बिंधने वाला मैं हूं, मेरे पिता, भाई अथवा चाचा नही। वे सब तो उस सामाजिक सांसारिक व्यवहार के पक्षधर हैं, जो परम्परा और रीति-रिवाजों के सहारे ही टिकी हुई है। भावना के संसार को जन्म देने वाली तो मेरी मां थी, जो हम दोनों की तीव्र वेदना और बेचैनी को महसूस करती। ललिता को कम से कम मुझ पर तो भरोसा करना चाहिए था।'......राजदेव पल भर मे ही बहुत कुछ

सोच गया। आयु के पचास वर्ष पूरा करने के बाद आज राजदेव सोचते हैं कि वे कितनी बड़ी गलतफहमी में थे। रहना तो समाज में होता है। संसार से गुजरने की राह ही जिन्दगी की राह होती है। उस राह पर मौसम की ठंडक है, गर्मी है। वहां दुर्दिन के साथ-साथ ओले भी झेलने पड़ते हैं। कभी लू चलती है तो कभी शीत लहरी। यह राह समतल से नहीं गुजरती ···· ऊबड़-खाबड़ जमीन, ताल-तलैया, पहाड़ियां-घाटियां पार करती हुई रेगिस्तान से बचती हुई समुद्र की अतल गहराई में खो जाती हैं।

राजदेव को पहली बार मालूम हुआ कि इमारत बनाने से पहली उसकी नींव डालने के लिए धरती की सख्त से सख्त परतों को तोड़कर हटाना पड़ता है। रोशनी पैदा करने के लिए शक्ति हासिल करने के वास्ते सैकड़ों फुट की गहराई तक चट्टान तोड़ने के बाद कोयला निकाला जाता है। भावना को स्वरूप देने के लिए व्यवहार की कारीगरी हासिल करनी होती है। राजदेव ने सहज भाव से ललिता का दाया हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा, "ललिता, मैंने तुम्हें सहज रूप से प्यार किया है और हमेशा तुम्हें प्यार किया है और हमेशा तुम्हें प्यार करता रहूंगा। स्वीकारने की बात कहा उठती है! मैं तो स्वयं तुम्हे समर्पित हू। शेष जो हैं, उनका केवल आशीर्वाद चाहिए। आशीर्वाद की अभिव्यक्ति व्यवहार मे नहीं है, परम्परा में है। परम्परा हम दोनों को जीवन-साथी के रूप मे स्वीकार करेगी ही करेगी। तुम मेरे अभिभावको की भंगिमा को नही, मेरी भावना को देखो।"

ललिता आंखें बन्द किये सोफे की पीठिका के सहारे बैठी रही। उसकी हथेली को राजदेव ने अपनी दोनों हथेलियो के बीच जकड़ रखा था। ललिता ने कोई आपत्ति नहीं की। दोनों इस मुद्रा में काफी देर तक बैठे रहे। अन्त में राजदेव ने कहा, "मैं आज ही भैया से बात करूंगा। मां की वर्षी दो महीने बाद होगी। उसके बाद मैं सामाजिक, सांसारिक रूप में तुम्हारा हो जाऊंगा। मुझ पर विश्वास रखो।"

ललिता ने आखें खोल दीं। असीम प्यार से आप्लावित दृष्टि से राजदेव के चेहरे को देखते हुए कहा, "तुम मुझे हमेशा इसी तरह, इतना ही प्यार करते रहोगे? यदि यह संभव हो सका तो मैं सारी कठिनाइयां, सबकी उपेक्षा झेल लूंगी।"···

तीन

· ··ज़मीन पर पड़े-पड़े राजदेव को लगा कि उनकी शक्ति क्षीण होती जा रही है। वे समझ गये थे कि उनके घुटने से काफी मात्रा में रक्त बह चुका है। वायुयान में, बगल में बैठे नव दम्पत्ति की याद आते ही, उनकी विचित्र दशा हो गयी। उस तरुणी के मुख से निकला हुआ वाक्य उन्हें इस कदर बेचैन कर गया कि वह अपने घुटनों का दर्द भी भूल गए थे। ललिता ने भी तीस साल पहले इसी आशय का वाक्य कहा था। और, यह बात उसके मुख से, वैवाहिक जीवन के तीस वर्षों में, न जाने कितनी बार सुनने को मिली थी। हर बार इस वाक्य के साथ एक घटना जुड़ी होती थी। हर बार इस वाक्य के साथ एक नया अर्थ ध्वनित होता था।······घोर शारीरिक मानसिक यंत्रणा में पड़े राजदेव तीव्र आंतरिक वेदना से भर उठे। घुटने का दर्द फीका पड़ गया।··· ··

आसमान का काला घना अंधेरा हटने लगा था। घनघोर जंगल में उगे हुए विशाल वृक्षों की फुनगिया, नीले आकाश की पृष्ठभूमि मे उभरने लगीं। राजदेव ने एक बार फिर उठकर बैठने की कोशिश की। लेकिन, वे सफल नहीं हो सके। ऐसी कोशिश का नतीजा यह हुआ कि उनके दाएं पैर के घुटने का दर्द अत्यधिक बढ गया। उन्होंने घुटने के आस-पास की ज़मीन टटोलकर देखी, तो उनकी उंगलियां तरल रक्त में लथपथ हो गईं। दूर पर कोई पक्षी चीख उठा। तुरंत उससे भी दूर घातक बाघ के गर्जन की प्रतिध्वनि गूंज उठी। अचानक ही जगल में बहुत-से पशु-पक्षी एक साथ चीख उठे।

राजदेव समझ गए कि आकस्मिक मृत्यु से बचकर भी, वे भयावह मौत के मुंह मे पड़े हुए हैं, असहाय। उन्होंने सोचा, इस आशका-ग्रस्त प्रतीक्षा से अच्छा यही होता कि अन्य यात्रियों की तरह वे भी दुर्घटना होते ही काल-कवलित हो गए होते। कम से कम मौत का एहसास तो नहीं होता। एहसास ही तो सब कुछ है। यह नहीं हो, तो दुःख नहीं, सुख नहीं, पीड़ा नहीं, आनन्द नहीं।

एहसास जहां पारिवारिक अथवा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति को

करुणा, प्रेम, क्षमा, संवेदनशीलता जैसे मानवीय मूल्यों की भाव-भूमि पर खड़ा कर देता है, वही आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य मे, यह मानव को देवत्व प्रदान कर देता है। लेकिन, कभी-कभी एहसास की बलि-वेदी पर व्यक्ति की चारित्रिक हत्या हो जाने का खतरा भी पैदा हो जाता है। .....

ललिता से राजदेव का विवाह हुए बाईस-तेईस वर्ष बीत चुके थे। जीवन-संघर्ष और जीविकोपार्जन के चक्कर में पड़कर अपना प्रदेश छोड़कर दोनों पटना से दिल्ली आ पहुंचे थे। घर में उनके दो बेटे थे और दो बेटियां। बड़ा पुत्र राम, नाम के प्रतिकूल, रावण बन गया था। दूसरी संतान थी नंदिनी, नवी कक्षा मे पढती थी। हीरामन स्वभाव से साहसी और संस्कार से निष्ठावान् होते हुए भी पठन-पाठन में कमज़ोर था। निवेदिता अभी दुधमुही बच्ची थी। इनके अतिरिक्त हर रोज चार-पांच रिश्तेदार स्थाई तौर पर घर में जमे रहते थे। कोई नौकरी पाने का इच्छुक होता तो कोई किसी का तबादला कराने चला आता था। दिल्ली-दर्शन के इच्छुक लोगों का आगमन भी होता ही रहता था। लेकिन, ऐसे लोग चार-पांच दिन के बाद पिंड छोड़ देते थे।

पुष्कर के बड़े बेटे *लालनारायण तीन वर्षों तक अपने चाचा के साथ ही* रहते रहे। लालनारायण के चलते राजदेव को काफी मानसिक संताप झेलना पडा था। वे क्या जानते थे कि कालेज की पढ़ाई पूरी करने के उद्देश्य से आया हुआ अठारह-उन्नीस साल का लड़का देखते-देखते दिल्ली के प्रमुख शोहदों में गिना जाने लगेगा?

पुष्कर ने उनसे कहा था, "लाल को दिल्ली लेते जाओ। तुम्हारे अभिभावकत्व मे रहकर शायद लिख-पढ ले।" राजदेव के कानों में यह भनक पड चुकी थी कि लालनारायण बुरी संगत मे पड़ गया है। वे नही चाहते थे कि लालनारायण की छाया उनके बाल-बच्चों पर पड़े। इसलिए संकोच के साथ बोले, "लाल मुजफ्फरपुर मे ही एम० ए० की पढाई जारी रखे तो ठीक रहेगा। दिल्ली की पढ़ाई कठिन है। वह चल नहीं पाएगा।"

"तुम पटना की पढाई मे चल पाए थे या नही? मैं भी चाहता तो तुम्हें पटना आने से रोक सकता था।"—पुष्कर ने कुपित होकर कहा। राजदेव की इच्छा हुई कि वे अप्रिय सत्य बोल दें. क्योंकि उनकी तुलना लालनारायण से की गई थी, जो आवारा और चरित्रहीन के रूप मे बदनाम हो चुका था। इसके अलावा जब वे पटना में पुष्कर के साथ रहकर पढ रहे थे, तब घर पर परिवार सयुक्त था। अब सब अलग-अलग थे। किन्तु, राजदेव खामोश ही

रहे और लालनारायण उनके साथ ही दिल्ली आ गया। राजदेव को जिस बात का डर था, वही हुआ। उनके बड़े लड़के राम को लालनारायण ने तुरंत अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पहले तो राम खेल-कूद, मार-पीट और सैर-सपाटे मे समय गुजारता था, अब वह लालनारायण की संगत मे पड़कर अन्य व्यसनों का शिकार बन गया। राजदेव पहले से ही राम के प्रति उदासीन थे, अब वे उससे घृणा भी करने लगे। परिवार मे कलह घर कर गई।

इसके बावजूद ललिता अपना सारा स्नेह राम पर उंड़ेल देती थी। वह जानती थी कि राम को पिता का स्नेह सुलभ नही है। राम देर से घर लौटता था और सुबह देर तक सोता रहता था। लालनारायण को अलग रहते दो साल बीत रहे थे। राम मौका पाते ही लालनारायण के यहां जा पहुंचता था। पढ़ाई का यह हाल था कि येन-केन-प्रकारेण कालेज के प्रथम वर्ष मे पहुंच पाया था, लेकिन हर महीने कालेज से उसकी शिकायत आ जाती थी। कभी वह कालेज की फीस जमा करने की बजाय खर्च कर डालता, तो कभी हफ्ते भर अपनी कक्षा से अनुपस्थित रह जाता। मार-पीट, दंगा-फसाद की सूचना तो आए दिन मिलती ही रहती थी। उसे सिगरेट और शराब की लत भी लग गई थी। राजदेव ने कई बार विचार किया कि राम को बैठाकर समझाना-बुझाना चाहिए, लेकिन कुछ ऐसी बात हो जाती कि राजदेव मन ही मन घुटकर रह जाते। एक दिन उन्होंने ललिता से कहा, "यदि यही रफ्तार रही तो तुम्हारा राम निश्चय ही खानदान का नाम रोशन करेगा।"

"क्या राम तुम्हारा नही है?" ललिता ने तत्क्षण व्यंग किया। इतने से ही ललिता को संतोष नही हुआ तो बोली, "यह 'मेरे-तुम्हारे' जैसे सवालों ने ही घर मे ऐसा दमघोटू वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि राम घर से बाहर भागा-भागा फिरता है।"

"तुमने कभी यह भी विचार किया है कि तुम्हारा लाड़-प्यार राम को कहा ले जा रहा है?"—राजदेव ने संयत होकर पूछा। ललिता, न जाने क्यों, राम का विषय छिडते ही मर्माहत हो उठती थी। उसने छूटते ही प्रश्न किया, "क्या मैं भी उससे तुम्हारी तरह घृणा करूं? बेटे को बेटा नहीं समझूं? उसके सुख-दुःख का ध्यान न रखकर उपेक्षा और अवमानना भोगने दूं? तुमने आज तक उसकी ओर ध्यान नही दिया तो आज क्यों चिन्तित हो उठे हो?"

राजदेव जानते थे कि राम के प्रति ललिता की भावना तर्क और विवेक

से कोसों दूर थी। फिर भी वे खामोश हो जाया करते थे। उनके सामने यही विकल्प रह जाता था। कुछ ही दिन बाद राम फिर कुछ ऐसी हरकत कर बैठता था कि राजदेव की खामोशी भंग हो जाया करती थी, और ललिता भावोद्रेक से भर उठती थी।

शायद राम रास्ते पर आ जाता, लेकिन ललिता का लाड-प्यार उसे फिर उसी रास्ते पर अग्रसरित कर देता। पिता-पुत्र के बीच हमेशा ललिता आ खड़ी होती। दोनों मे वाक्-युद्ध छिड जाता। इससे घर की शांति भंग हो जाती। ललिता यह मानने को कदापि तैयार नही थी कि राम में कोई दुर्गुण है, कोई बुराई है। राम को वह अपने प्रथम प्यार की निशानी मानती थी। राम अपने दुर्गुण छिपा रखने में माहिर हो गया। वह अपनी मां को समझा-बुझाकर अपने-आपको निर्दोष सिद्ध कर देता। राजदेव के शुष्क और अमुखर स्वभाव के चलते ललिता ही नही, अन्य लोग भी राम की बात पर यकीन कर लेते।

देखने में राम बहुत ही भोला-भाला था। उसके गौर वर्ण मुख-मण्डल, बड़ी-बडी निश्छल आंखें, सुगढ़ रक्तिम होठों के ऊपर लम्बी खड़ी नासिका, *असामान्य रूप से बड़े कंधे और चौड़े वक्षस्थल को देखकर लोग मुग्ध हो जाते* थे। सत्रह् वर्ष की अल्पायु में वह चौबीस-पच्चीस साल का वलिष्ठ युवक दीखता था। उसमें बला की ताकत भी थी। आठ-दस व्यक्तियों से घिर जाने पर भी वह सबको मार-पीट कर निकल भागता था। व्यवहार में वह अत्यधिक मधुर था। हमेशा मुस्कराता रहता था। लेकिन भुक्तभोगी ही जान पाते थे कि वह कितना उद्धत, कितना क्रूर और कितना हृदयहीन युवक है। एक बात जरूर थी कि वह जो भी काम करता था, अकेले मे और छुपकर करता था। इसलिए, किसी को उसके गलत आचरण पर विश्वास नही हो पाता था। किन्तु, राम का पाप एक दिन ललिता के सामने फूट ही गया।

गर्मी के मौसम मे राजदेव घर के भीतरी आंगन में सोया करते थे। वही पर ललिता, नन्दिनी, निवेदिता और हीरामन की खाटें भी बिछी होती थीं। लेकिन, राम जान-बूझकर घर के बाहर लान में या कभी बरामदे में सोया करता था। बाहरी बरामदे के अन्त में, पीछे की तरफ, एक छोटी-सी कोठरी थी, जिसमे दरवाज़े नहीं थे। उस कोठरी मे एक कहार दम्पति रहता था। कहार का नाम था बाबूलाल। उसकी उम्र तैंतीस-चौंतीस साल रही होगी। बाबूलाल की पत्नी पारो बीस-इक्कीस साल की अल्हड़ युवती थी। ये दोनों आस-पास के कई घरो मे झाड़ू-पोंछा देकर और बरतन मांजकर

अपना जीवन-निर्वाह करते थे। बाबूलाल बहुत ही सीधा-सादा आदमी था। शहर के लिए बिल्कुल नया था। गांव छोड़कर वह इसलिए शहर में चला आया था, क्योंकि गाव मे उसकी पहली पत्नी रधिया उसे छोड कर दूसरे मर्द के साथ रहने लगी थी। जब बाबूलाल ने पारो से दूसरा विवाह किया, तब रधिया ने उसके घर के चक्कर काटने शुरू किए। शुरू में वह लडाई-झगड़े का बार-बार बहाना ढूढती रही। जब इसमें वह सफल नहीं हो सकी, तब उसने पारो को उकसाना और उसके कान भरना शुरू किया। पारो इतनी अबोध और सरल थी कि रधिया की दाल नहीं गली। अन्त में रधिया ने ब्रह्मास्त्र छोडा। वह पारो को दिखा-दिखाकर बाबूलाल के साथ प्यार का अभिनय करने लगी। कभी वह मास पकाकर बाबूलाल को खिलाने आ पहुंचती तो कभी ताडी खरीदकर ले आती। कभी-कभी अकारण ही वह बाबूलाल के पास सटकर बैठ जाती और हंस-हंस कर बातें करती हुई उसकी देह पर गिर-गिर जाती। नारी कितनी भी सरल और अबोध क्यों न हो, वह यह बर्दाश्त नहीं कर सकती कि कोई दूसरी औरत उसके पुरुष की हिस्सेदार बनकर आ खड़ी हो। यह सब देखकर पारो भी अपने पति से लड़ने-झगड़ने लगी। तंग आकर बाबूलाल ने गांव छोड़ दिया।

पारो की अल्हड़ता और उसके श्रमसिक्त सुगठित शरीर से फूटते हुए मद ने राम को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लिया। राम मे बुरी लत पड़ ही चुकी थी, जिसके चलते उसके संस्कार भी भ्रष्ट हो गये थे। वह आते-जाते भूखी नजरों से पारो को देख लिया करता था। लेकिन इसी से राम को संतोष नहीं हुआ, बल्कि उलटे उसकी कामाग्नि मे पारो के गठे हुए अंग-प्रत्यंग की झलक घी का काम करती रही। पारो इन बातों से बेखबर थी।

एक रात राम ने बाबूलाल को अपने पास बुला लिया। राजदेव ललिता, हीरामन आदि खा-पीकर घर मे भीतरी आगन मे सो रहे थे। शराब की पूरी बोतल राम कालेज की फीस के पैसे से खरीद लाया था। वह बाबूलाल को अपने पास बिठाकर उसे शराब पिलाने लगा। उसने पहले से ही सारी योजना बना रखी थी। वह स्वयं तो थोड़ी-थोड़ी पीता रहा, और बाबूलाल के गिलास मे बार-बार पूरी मात्रा में शराब उंड़ेलता गया। घण्टे-डेढ घण्टे में ही बाबूलाल नशे में मत्त होकर, वहीं बरामदे पर राम की खाट के पास लुढ़क गया। राम को इसी घडी की प्रतीक्षा थी। वह दबे पाव बरामदे के पीछे वाली कोठरी मे जा पहुचा। वहां पारो दिन भर के परिश्रम से थकी-हारी बेसुध होकर सो

रही थी। उस कोठरी में बिजली नही थी। एक कोने मे धूमिल लालटेन जल रही थी। उसकी रोशनी कोठरी के अंधकार को चीरती हुई, मद्धिम चिनगारी की तरह दहक रही थी। पारो के वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। लालटेन की रक्तिम रोशनी मे, पारो के खुले अंगों को देखते ही, मुद्दत से दबी हुई राम की कामाग्नि लपटें मारने लगी। फिर उसे होश नही रहा। वह तो वासना की राक्षसी भूख मे अंधा हो चुका था।

दूसरे दिन ही पारो ने राम के पशुवत् व्यवहार का जिक्र अपने पति से कर दिया। बाबूलाल बेचारा क्या करता! उसने जाकर ललिता को अपनी व्यथा सुना दी।

विवेक के अभाव मे ज्ञान ही नही, प्यार भी घातक हो जाता है। मां का हृदय पुत्र के प्रति असीम प्यार से लबालब भरा रहता है। वहां वात्सल्य, करुणा, दया और क्षमा की उद्दाम निर्झरिणी प्रवाहित होती रहती है। इस उद्दाम प्रवाह को, सामाजिक व्यवस्था के निर्वाह के लिए, विवेक के बाध से ही मर्यादित किया जा सकता है।

ललिता प्यार और विवेक के इस पारस्परिक निर्भरता से अनभिज्ञ थी। उसके मन में यह बात बैठ चुकी थी कि राम अपने पिता के व्यवहार के पहले, उनकी उपेक्षा से खीझकर मार्ग-भ्रष्ट हो रहा है, कि राम पितृ-स्नेह और सद्भाव के अभाव मे ही अविवेकी बन गया है, कि राम बचपन से प्यार का भूखा है, कि राम को घर का अभिभावक अपने से दूर रखता आया है, इसलिए राम भागता फिर रहा है। ललिता जितना ही इस विषय पर विचार करती, उतना ही वह राम के प्रति सहानुभूति और स्नेह से भर उठती थी। अपने निश्छल और उद्दाम वात्सल्य के चलते वह सोच भी नही पाई कि राम पतन और विनाश की राह पर कितना आगे बढ चुका है।

बाबूलाल के मुह से गत रात की घटना का विवरण सुनकर ललिता घबरा उठी। उस समय उसे राम के कुकर्मों की उतनी चिन्ता नही हुई, जितनी चिन्ता उन कुकर्मों को अपने पति राजदेव से छिपाए रखने की। कुछ देर तक तो वह जड़वत् अवाक् बैठी रही। लेकिन तुरंत ही उसके मन मे कुछ विचार आया। वह उठकर कमरे के भीतर चली गई। थोड़ी ही देर मे बाहर आकर तीन सौ रुपये बाबूलाल के हाथ मे देती हुई बोली, "जो कुछ तुम्हारा लुट गया है, उसे मैं लौटा नही सकती। उसका मूल्य चुकाना मनुष्य के बूते के बाहर की बात है। अब तक जो कुछ हुआ, उसे भूल जाने में ही तुम्हारी इज्जत-

है। मैं तुम्हारे पाव पड़ती हूं। तुम यह तीन सौ रुपये ले लो और अपनी पत्नी के साथ दूसरी जगह जाकर रहो। तुम्हें ईश्वर की शपथ, यह बात किसी से न कहना।" बाबूलाल बात समझ गया। उसके सामने दूसरा उपाय भी तो नहीं था। इसलिए रुपये लेकर वह चुपचाप घर से बाहर निकल गया।

शाम होने पर, ललिता ने बाहरी बरामदे के पीछे जाकर देखा, कोठरी में बाबूलाल का केवल सामान पड़ा हुआ था। वहां न तो पारो थी, न बाबूलाल। दिन भर वह अधीर स्थिति मे पड़ी हुई थी। राम सुबह का घर से निकला था, सो लौटकर नहीं आया। राजदेव आ गए थे।

राजदेव अपनी पत्नी के मुख-मण्डल की प्रत्येक रेखाओं को पढ सकते थे। उन्हें उसकी भंगिमा, यहां तक कि चलने के ढंग से भी उसके मूड का पता चल जाता था। राजदेव ने गौर किया कि ललिता किसी बात को लेकर उद्विग्न है। कभी वह अचानक ही बाहर चली जाती, तो कभी रसोईघर मे जाकर नौकर से उलझ पड़ती। राजदेव की नजरों से बचने के क्रम मे कभी वह कोई पुस्तक उठाकर चुपचाप पढने लगती और पढ़ते-पढ़ते बाहर दरवाजे की ओर देखने लग जाती थी। राजदेव ने कई बार कारण जानना चाहा। लेकिन ललिता एक अजीब विषादपूर्ण मुस्कराहट के साथ बात टाल जाती।

अन्त में राजदेव ऊबकर बोले, "यदि कोई बात नहीं है तो तुम चहल-कदमी क्यों कर रही हो?"

"इससे आपको क्या? आपको सारे संसार के समाचार बटोरने से फुर्सत कहां कि घर के समाचार की चिन्ता करें।"—ललिता ने तमककर कहा। राजदेव घर में प्रवेश करते समय ललिता की भंगिमा, विशेषकर उसके भिंचे हुए होंठों की वक्रता देखकर ही समझ गए थे कि मामला गम्भीर है। वे जानते थे कि ललिता का स्वास्थ्य इन दिनो ठीक नहीं चल रहा है। उन्हें यह भी मालूम था कि ललिता का स्वास्थ्य घर के वातावरण के अनुसार बनता-बिगड़ता रहता था। इसलिए, उन्होंने संयत स्वर में कहा, "संसार के समाचार की चिन्ता नहीं करू तो घर की समस्याओं का समाधान कहां से कर पाऊंगा! उसी काम की तो रोटी खाता हूं।"

"फिर मुझसे मत पूछिए कि क्या हुआ है।"—यह कहकर ललिता वहा से बाहर निकल गई। वह सीधे बाहरी बरामदे के पीछे वाली कोठरी में जा पहुंची। बाबूलाल अपना सामान ले जा चुका था। अनायास ही ललिता के मुंह से लम्बी सांस निकल गई।

पारो की कोठरी देखकर लौटते समय उसे राम के कुकर्मों की भयंकरता का ज्ञान हुआ। अपने कमरे में आकर पलंग पर बैठते ही उसे लगा, जैसे कमरे की दीवारें ज़ोर से नाच रही हैं। वह तकिये मे मुंह छिपाकर औंधी पड़ गई, तो लगा कि उसका शरीर घूम रहा है। वह अचानक उठ बैठी। उसने महसूस किया कि उसका दम घुट रहा है। उसने चारों तरफ आंखें फाड़-फाड़ कर देखा, कही कोई नहीं था और तब वह बिलख-बिलख कर रो पड़ी। उसका सारा शरीर पल भर मे ही पसीने से लथपथ हो गया। उसने पलंग से उठने की कोशिश की तो उठ नही पाई। उसे लगा, जैसे सारे शरीर को लकवा मार गया हो। ऐसा अनुभव होते ही वह ज़ोर-ज़ोर से रो पड़ी। उसका रोना सुनकर बड़ी लड़की नन्दिनी कमरे में भागी-भागी आ पहुंची। उसने अपनी मां का हाल देखा तो घबराहट के मारे उसके मुंह से चीख निकल गई, "मां, क्या हुआ मां!···बाबू जी···बाबू जी जल्दी आइए।" राजदेव भागे-भागे आए। ललिता की यह हालत देखकर उनके हाथ-पांव फूल गए, उनका कण्ठ सूख गया और वे बड़ी मुश्किल से बोल पाए, "क्या हुआ तुम्हे?" ललिता ने हाथ के इशारे से संकेत करके बताया कि सारा कमरा उसे घूमता हुआ लग रहा है। राजदेव ने नन्दिनी को पानी लाने को कहा, और स्वयं वे ललिता को अपने कलेजे से सटाकर बैठ गए। अपनी धोती के छोर से ललिता के आंसू पोंछते रहे। नन्दिनी पानी लेकर आई। तब तक हीरामन और निवेदिता भी वहा पहुंच गए थे। राजदेव ने ललिता को पानी पिलाने के बाद उसे आहिस्ते से पलंग पर लिटा दिया और बच्चों से कहा—

"तुम लोग यही रहो। मैं डाक्टर को फोन करके आता हूं।" राजदेव पलंग से उठने ही लगे थे कि ललिता ने उनका कुरता पकड़कर पलंग पर बिठा लिया। कुछ देर बीतने के बाद ललिता धीरे-धीरे सामान्य स्थिति मे आने लगी। राजदेव अपने बच्चों सहित वही बैठे रहे। लगभग दो घण्टे बाद ललिता के मुंह से आवाज़ निकली, "राम अब तक नहीं आया। मालूम नही वह कहां चला गया।"

"यह कोई नई बात है?"—राजदेव ने किंचित् कुपित स्वर में अपनी बात जारी रखी, "वह तो रोज़ ही देर से लौटता है। कही ताश खेल रहा होगा या न जाने अभागा क्या कर रहा होगा। अच्छा होता कि ऐसा लड़का···"

राजदेव अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाए कि ललिता उनके मुंह पर अपना हाथ रखती हुई बोली, "ऐसा न कहो। अभागा है, तभी तो नसीब में

पिता का प्यार नहीं है, इसीलिए तो वह आदमी नहीं बन सका। इसीलिए तो'''तुम उसे अपने पास बैठाकर कभी यह भी नहीं पूछते कि कहां रहते हो, क्या करते हो? जिम्मेवारी और कर्तव्य की भावना बच्चे को विरासत में पिता से ही मिलती है। तुमने तो बेटे को बेटा समझा ही नहीं।"

राजदेव चुप रहे। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया।

रात गई, बात गई। इस घटना के पांच-छह महीने बाद राजदेव को अपने गांव जाना पड़ा। अक्तूबर का महीना था। दो दिन पहले उत्तर बिहार में भयंकर तूफान के साथ ज़ोरों की वर्षा हुई थी, जिसके चलते हवा में तीखी ठंड भी थी।

गर्मी में पहनने-ओढ़ने योग्य वस्त्र लेकर राजदेव दिल्ली से चले थे। गांव पहुंचते ही जोरों की हवा के साथ जो मूसलाधार वर्षा शुरू हुई, सो दिन भर, रात भर और दूसरे दिन शाम तक जारी रही। अक्तूबर में जनवरी जैसा मौसम महसूस होने लगा।

दालान में तीन ही कमरे थे और तीनों अनाज या पटसन से भरे हुए। मजबूर होकर राजदेव को बरामदे पर सोना पड़ा। पिछली रात तो लगभग पूरे बरामदे तक पानी की बौछार (झपास) आती रही थी। इसलिए वे कई रातों से सो नहीं पाए थे। उस रात नींद से पलकें भारी हो रही थीं किन्तु, ठंडी हवा चलती तो, राजदेव की नींद उचट जाती।

वे आखें खोलकर देखते, रात के सन्नाटे में सोया हुआ गांव अजीब लगता, जैसे आवा के भीतर आग की जगह धुआं जमकर बर्तनों के साथ एकाकार हो गया हो। उन्हें लगता, जैसे सामने के घर में कुछ लोग बातचीत कर रहे हों। फिर वे सो जाते। इसी प्रकार वे जगते-सोते रहे कि सामने की बखरी के उस पार अमरनाथ के घर से अचानक ही जोरों का शोरगुल उठा और किसी महिला की हृदय-वेधक चीख शोरगुल के बीच से बार-बार उभरने लगी। राजदेव चौंककर उठ बैठे। उन्होंने कलाई की घड़ी देखी, रात के दो बज रहे थे। जल्दी से उन्होंने सिरहाने के नीचे से टार्च उठाई और अमरनाथ के घर की ओर तेज चाल से चल पड़े। तब तक दूर-पास से कई गांव वालों के प्रश्न-बाण शांत वातावरण को वेधने लगे, "क्या हुआ है? अरे ओ अमरनाथ! क्या बात है? अबे ओ पलटुआ, ज़रा देखना तो कौन किसे रेत रहा है!"

कुछ लोगों को सन्तोष नहीं हुआ तो खेतों और पगडंडियों से होकर दौड़ते हुए अमरनाथ के दरवाज़े पर आ पहुंचे। राजदेव के पहुंचने के पूर्व ही, वहां गांव के तीस-चालीस लोग इकट्ठे हो चुके थे। अमरनाथ राजदेव का चचेरा

भाई लगता था। दोनों के पिता सगे भाई थे। इसलिए रामदेव को घर के भीतर आने में कोई संकोच नहीं हुआ।

घर के भीतर का दृश्य देखते ही रामदेव सन्न रह गए। अमरनाथ बांस की अच्छी-खासी लाठी से, बरामदे पर औंधी पड़ी एक महिला को पीटता जा रहा था। महिला बहुत चीखी। उसके हृदय-विदारक क्रन्दन से रात का अन्धकार दहल उठा। लेकिन, अमरनाथ पर कोई असर नहीं था। आंगन में अमरनाथ के छोटे भाई उमेश को दस-बारह आदमी ताकत लगाकर पकड़े हुए थे। फिर भी, वह कभी-कभी अपने को लगभग मुक्त कर लेता था, कि तभी सब के सब उसे जकड़ लेते थे। दस-बारह आदमियों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से लोग उसे घेरकर खड़े थे। उमेश अपने को छुड़ाने और अपने बड़े भाई अमरनाथ को जोर-जोर से गालियां देने में लगा हुआ था। उमेश चीख-चीख कर अपने सगे बड़े भाई को कह रहा था, "हरामजादे, मैं तुम्हें देख लूंगा। अगर हिम्मत है तो मेरे पास आओ। मैं तुम्हारी हड्डी-पसली एक करके रख दूंगा। नामर्द, एक कमजोर औरत को पीट रहे हो, केवल इसीलिए कि वह तुम्हारे साथ सोने को तैयार नहीं हुई! मक्कार कहीं के!" उमेश की ललकार नक्कारखाने में तूती की आवाज सिद्ध हो रही थी। वहां मौजूद हर आदमी कुछ न कुछ बोल रहा था—जोर-जोर से बोल रहा था। अमरनाथ कभी-कभी रुककर उमेश को [illegible] आंखों से देखने लगता।

उमेश गरज उठा, "ज्यादा ताकत दिखा रहा है। सुबह होते न होते तुम्हारी दोनों टांग तोड़ दूंगा। देखता हूं कि कब तक तुम्हारे ये भाड़े के टट्टू मुझे रोक पाते हैं।" यह कहकर उमेश ने अपनी दोनों भुजाओं को [illegible] से झटक दिया। चार-छह जवान लड़खड़ाकर दूर जा गिरे। उमेश अपने बड़े भाई की तरफ लपका ही था कि फिर उसे जकड़ लिया गया। अमरनाथ [illegible] अपना क्रोध [illegible] के लिए [illegible] लाठी महिला [illegible] जमा दी। फिर भी [illegible] नहीं हुआ तो उसने महिला के [illegible] के लिए [illegible] घसीटा। महिला चीख उठी। अमरनाथ ने उसे [illegible] लगा कि तभी रामदेव ने ललकार कर [illegible] और [illegible] बढ़ते हुए कहा, "यह क्या कर रहे हो? [illegible] के पीछे [illegible] नहीं [illegible]।"

"हां [illegible] इज्जत की [illegible]

[illegible]

लगाने के लिए जिन्दा नहीं छोड़ूंगा।"—इतना कहकर अमरनाथ जमीन पर पड़ी महिला को लात-घूंसे से पीटने लगा।

राजदेव कूदकर अमरनाथ और उस महिला के बीच खड़े हो गए और ऊंचे स्वर में बोले, "खबरदार, जो अब इस पर हाथ उठाया!" अमरनाथ राजदेव के स्वभाव से भली-भांति परिचित था। गांव वाले भी जानते थे कि राजदेव को यदि क्रोध आ जाय तो भला इसी में है कि लोग उसे अकेला छोड़ दें या उसकी बात मान जाय। वैसे भी राजदेव की प्रतिष्ठा पूरे गांव में थी। उनके दबदबे को घरवाले एवं रिश्तेदार भी स्वीकार करते थे। शारीरिक शक्ति में राजदेव अमरनाथ से भारी पडते थे।

अमरनाथ तीन-चार कदम पीछे हटकर बोला, "आप कब तक इसे बचाएंगे? अब इस घर में इस रंडी की खैरियत नहीं है। और इस साले कुल-कलंकी उमेश से भी मेरा कोई रिश्ता नहीं रहा।"

अमरनाथ की यह बात सुनते ही उमेश बोल उठा, "तुमसे रिश्ता रख के मेरा उद्धार नहीं हो जाएगा। मुझे मेरा हिस्सा दे दो। मैं अलग रहूंगा।"

"अलग रह सकते हो, लेकिन इस औरत के साथ नहीं।" एक गाव वाले ने, जो उसे पकड़े हुए था, दांत पीसते हुए कहा।

उमेश ने कहा, "मैं निशा के साथ ही रहूंगा। तुम लोगों का क्या बिगड़ता है? मैंने इससे शादी कर ली है। यह मेरी पत्नी है।"

"यह विधवा है। इसका पति तुम्हारा बड़ा भाई शंकर था। वह मर गया। और हमारे समाज मे विधवा विवाह नहीं होता।"

"हां, हां! मदन बाबू ठीक कहते हैं। हम गांव के समाज को गन्दा नहीं करने देंगे। हमारी बहनें हैं, बेटियां हैं, जिनका विवाह करना है। यदि तुम इस विधवा औरत के साथ गाव मे रहोगे, तो हमारे कुल-कुटुम्ब में कोई थूकने भी नहीं आएगा।" दूसरे गांव वाले ने कहा। राजदेव की समझ में पूरी बात आ गई। अपने घर से दूर दिल्ली में रहकर भी वे गांव के हाल-समाचार से अवगत रहते थे।

अमरनाथ का छोटा भाई शंकर अर्ध-विक्षिप्त था। उसकी शादी नहीं हो रही थी। आर्थिक दृष्टि से अमरनाथ, शंकर और उमेश पूरी तरह दरिद्र थे। जो थोड़ी-बहुत जमीन थी, वह गंगा के पेट में समा गई थी। बासगीत सहित एक बीघा जमीन बच रही थी, जिसमें तीन भाई हिस्सेदार थे। ऐसे परिवार

को भला कौन बाप अपनी बेटी देता ! इसलिए मेहनत-मजदूरी करके अमरनाथ, शंकर और उमेश जो कुछ धन संग्रह कर सके थे, उसे लेकर वे तिरहुत पहुंचे और वहां से दो बालिकाएं खरीद लाए। एक बालिका की उम्र बारह साल थी, जिससे पच्चीस वर्षीय अमरनाथ ने विवाह कर लिया और दूसरी बालिका निशा दस साल की थी, जिसे बाईस वर्षीय विक्षिप्त शंकर की पत्नी बना दिया गया।

शंकर को महीने में तीन-चार बार पागलपन का भयंकर दौरा पड़ता था। वह कभी ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर देता तो कभी हंसना। यह सिल-सिला घण्टे-डेढ़ घण्टे तक चलता रहता। ऐसा करते समय वह स्थिर नहीं बैठ पाता था। वह चारों तरफ भागना शुरू कर देता था। इसलिए दौरा पड़ते ही उसे पकड़कर बाध दिया जाता था।

निशा यह सब देखती-देखती सोलह-सत्रह साल की हो गई। एक दिन शंकर को दौरा पड़ा। घर पर कोई नहीं था, जो उसे बाध सकता। शंकर रोता-हंसता हुआ अचानक ही सड़क पर जा पहुचा। उसी समय वहा तेज़ गति से एक ट्रक आ पहुंचा, जो शंकर को रौंदता-कुचलता हुआ निकल भागा।

उमेश जब सोलह साल का था, तब निशा खरीदी हुई दुलहिन बनकर उसके घर आयी थी। घर मे सबसे छोटा होने के कारण उमेश को निशा आरम्भ से ही अपने निकट महसूस करने लगी। उमेश के घर में आते ही वह दौड़कर उसके पास जा बैठती और अपने गांव-घर के बारे मे उसे तरह-तरह की बातें बताने लगती। उमेश चुपचाप बैठा सुनता रहता कि निशा के गांव में तीन तालाब हैं, जहां मखान की खेती होती है, जिनमें बड़ी-बड़ी मछलियां हैं और जिनमें बड़े सुन्दर-सुन्दर फूल खिलते हैं। निशा यह भी बताती कि उस गांव में शिव का बहुत पुराना मन्दिर है—बहुत पुराना, जहां किसी को भी मनोकामना पूरी होने का वरदान मिल सकता है, और निशा ने भी वरदान मांगा है।

"क्या वरदान मागा है ?" उमेश ऊबकर पूछ बैठता।

"यही कि मेरा पति बहुत बड़ा आदमी हो।" यह कहकर निशा अपने मुंह में आंचल ठूंस लेती। उमेश उसका मुह देखता रह जाता।

उमेश को निशा अच्छी लगती थी, केवल इसलिए कि घर में निशा के अतिरिक्त और कोई लड़की या औरत नहीं थी, जिससे वह बात कर सके। लेकिन, निशा की बातों में उसे कोई रस नही मिलता था। उमेश को एक ही बात में रस मिलता था, और वह बात होती पहलवानों की।

उमेश को बचपन से ही बाबू नगीनासिंह की हवेली के पास बने अखाड़े के पास बैठकर कुश्ती देखने और अखाड़े की मिट्टी लगाने का चस्का लग गया था। बाबू नगीनासिंह गांव के बड़े काश्तकार थे। उन्हें पहलवान रखने और कुश्ती लड़ाने का खानदानी शौक था। इलाके भर में वे बाबू साहब के नाम से विख्यात थे।

उमेश अखाड़े के पास बैठा-बैठा कुश्तियां देखते-देखते खुद भी दंड-बैठक मारने लगा, पहलवानों की मालिश करने लगा, उनके लिए बादाम पीसने लगा और इस प्रकार वह पहलवानों का कृपा-पात्र बन गया। बड़ा होने पर पहलवानों ने उसे कुश्ती के दांव-पेंच सिखाने शुरू कर दिए। धीरे-धीरे उमेश की दुनिया अपने घरवालों से अलग बस गई। वह अधिकतर बाहर ही रहने लगा।

उमेश के दिमाग में यह बात बैठ गई कि ब्रह्मचर्य के बिना पहलवानी नहीं हो सकती। वह गामा बनने के ख्वाब देखने लगा। बाबू साहब के अपने पहलवान थे विलासासिंह। वैसे तो उनका घर का नाम वाणीविलास था, लेकिन उनके पंजाबी उस्ताद ने विलासा कहना शुरू किया। वाणीविलास ने भी यही नाम अपना लिया, क्योंकि उन्होंने महसूस किया कि विलासा से मर्दानगी टपकती है और वाणी से जनानापन। विलासासिंह उमेश को बेटे की तरह मानने लगे और धीरे-धीरे उसे नामी पहलवान बना दिया। सत्रह साल का होते-होते उमेश जिला-जवार की कुश्तियों में शामिल होने लगा। बादाम-दूध उसे मुफ्त में अपने उस्ताद से मिल जाता था। बाबू साहब में भी उमेश के प्रति दिलचस्पी पैदा हो गई। इसलिए उसे अपनी राह पर आगे बढ़ने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उमेश में दुर्गुण कोई नहीं था। कभी-कभी वह भंग जरूर छान लेता था।

इन कारणों से उमेश को निशा में कोई दिलचस्पी नहीं थी। फिर भी, निशा उसे अच्छी लगती थी। निशा के भोलेपन पर उसे अजीब अनुभव होता, जैसे शंकर का भाई होने के नाते वह कोई अपराध कर बैठा हो।

शंकर पच्चीस साल का होकर भी बुद्धि में पांच साल का था। वह जानवर की तरह खेत में खटता था और, घर आते ही खाकर सो जाता था। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट था, लेकिन दिमाग पूरी तरह अविकसित। अमरनाथ ने जबरदस्ती उसके गले में निशा को बांध दिया था, और शंकर था जो निशा को पहचानने से भी इन्कार करता था। उमेश यह सब देखकर अमरनाथ के प्रति घृणा से भर उठता था। उमेश में अमरनाथ के प्रति जितनी घृणा उपजती,

उसी अनुपात में निशा के प्रति सहानुभूति जगती। पहले उमेश हफ्ते में एक-दो बार घर के चक्कर लगा लिया करता था। अब वह हर रोज घर आने लगा। उसने महसूस किया कि निशा को उसकी ज़रूरत है। हालांकि बड़ी होकर निशा गम्भीर हो गई थी। अब वह अपने गांव के पोखर-मन्दिर का जिक्र नहीं करती थी।

शंकर के मरने के बाद निशा में वैसी ही प्रतिक्रिया हुई, जैसे किसी असाध्य रोग से छटपटाते हुए व्यक्ति की मृत्यु पर किसी की प्रतिक्रिया हो सकती है। उसने कभी भी शंकर को पति के रूप में [महसूस नहीं किया था। उस घर में यदि उसका थोड़ा-बहुत लगाव भी था, तो केवल उमेश से।

उमेश गांव के युवकों में अद्वितीय था। किशोरावस्था आते ही उसमें पहल-वानी के साथ-साथ लाठी भांजने का शौक भी पैदा हो गया। वह इधर महीनों-महीनों तक अपने गांव-घर से गायब रहता था। जहां-कहीं किसी बड़े पहल-वान या विख्यात लठैत का नाम सुनता, उमेश वहां पहुच जाता और महीनों वहीं रहकर कुश्ती के दाव-पेंच तथा लाठी भांजने के तौर-तरीके सीखने में व्यस्त हो जाता। धीरे-धीरे उसके शरीर में असीम शक्ति और भुजाओं में बेजोड़ ताकत आ गयी। गाव के सबसे बड़े काश्तकार बाबू नगीनासिंह उमेश से इतना अधिक प्रभावित हो गये कि उन्होंने उसे अपने पास ही रख लिया था, ताकि वह समय-कुसमय उनकी रक्षा कर सके, बाहर जाने पर कोई उन पर बुरी दृष्टि न डाल सके। गाव में बड़े-बड़े काश्तकारों पर, जमीन-जायदाद को लेकर, खतरा बना ही रहता है।

बाबू नगीनासिंह 'बाबू साहब' के नाम से इसलिए भी विख्यात थे, क्योंकि उनके यहां दूध-घी की नदी बहती थी, सबके लिए भण्डारा खुला रहता था। उमेश को शरीर की आवश्यकतानुसार बढ़िया खुराक मिल गयी। वह रोज तीन सौ दंड और छह सौ बैठक लगा लिया करता था। बाबू साहब ने अपने दरवाज़े पर ही अखाडा खुदवा दिया था, जिसमें आस-पास के पहलवान आने लगे थे। लेकिन, देखते ही देखते उमेश ने पहलवानी मे ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली कि जिला-जवार के सभी पहलवानों ने उसका लोहा मान लिया था। विलासासिंह अपने शिष्य की बढती देखकर फूले नहीं समाते थे। कोई भी पहल-वान उन्हें चुनौती देता तो कहते, पहले मेरे शागिर्द से हाथ मिलाकर देख लो।

सारी बात समझ लेने पर, राजदेव ने लोगों को शान्त करते हुए कहा,

"आप लोग यही चाहते हैं न कि ये दोनों यहां से चले जायं ?"

कई आवाजें एक साथ गूंज उठी, "हां, ये दोनों जहन्नुम में चले जायं, हमें इससे कोई मतलब नहीं। हम यही चाहते हैं कि गांव में रहकर ये लोग गन्दगी नहीं फैलायें।"

"तो ठीक है। कल सुबह में दिल्ली जा रहा हूं। आठ घण्टे के लिए ये दोनों हमारे दालान में रहेंगे। और सुबह मेरे साथ दिल्ली चले जायेंगे।"

भीड़ मे एक भुनभुनाहट फैली। राजदेव ने उसकी कोई चिन्ता नही की। उन्होंने केवल भीड पर एक विहंगम दृष्टि डाली। भीड़ सहम गयी। फिर उन्होंने निशा के पास पहुंचकर, उसे सहारा देकर उठाया। तब तक लोगों ने उमेश को छोड़ दिया था। मुक्त होते ही उमेश आंगन के कोने मे पड़े बांस की तरफ लपका कि तभी राजदेव ने आदेशात्मक स्वर मे कहा "उमेश ! यदि तुम अपना और अपनी पत्नी का भला चाहते हो तो चुपचाप मेरे साथ चले आओ।"

राजदेव की बात ने उमेश पर जादू का-सा असर किया। उसके बढते पाव अचानक रुक गये। हाथ में आया हुआ बांस का टुकड़ा जमीन पर गिर गया। और वह चुपचाप राजदेव के पीछे हो लिया।

राजदेव के जीवन में बहुत-से उतार-चढाव आये थे और वे गिरते-पड़ते छोटे-बड़े अनगिनत कष्ट झेलते हुए शून्य से बढकर संपन्नता की स्थिति में पहुंच पाये थे। उन्होंने अपने पाव के सहारे चलना सीखा, राह बनाने के लिए उन्हें कदम-कदम पर अपनी भुजाओं का इस्तेमाल करना पड़ा और रोशनी पाने के लिए वे बार-बार अंधेरे में भटकते रहे। रूढिगत परम्पराओं और अन्ध-मान्यताओं की जकडन से मुक्त होने के क्रम मे वे कई बार अभिभावकों और स्वजनों की भर्त्सना के शिकार भी हुए। ललिता को अपनी जीवन-संगिनी के रूप में स्वीकार करने मे भी उन्हें परम्परागत परिवेश की जडता से जूझना पडा था। तब तक वे नहीं जानते थे कि अस्वीकृति और अपरिग्रह के बिना जीवन में स्वीकृति और सहारा नहीं मिलता है। विवाह के बाद ही वे अनुभव कर पाये कि जुड़ने के लिए कहीं न कहीं से टटना पडता है। कर्तव्य और दायित्व-बोध की यह अनिवार्यता है। और, जहां व्यक्ति जुड़ता है वहां भी देखने भर के लिए, यथा-स्थिति रहती है, किंतु भीतर ही भीतर एक अनवरत तनाव बना रहता है। कदाचित यह खींच-तान गति के लिए आवश्यक है। जीवन गतिशील है, इसीलिए यह सतत संघर्ष भी भीतर ही भीतर छिड़ा रहता

है। विवाह के बाद ही राजदेव अपने पिता से भीतरी तौर पर अलग जा पड़े थे। यह भी अच्छा ही हुआ। कारण कि राजदेव को लीक छोड़कर नयी राह बनानी पड़ी। इसका उन्हे सन्तोष था।

राजदेव के गांव रतनपुर में उस रात जो घटना घटी, उसमें दृश्य अथवा अदृश्य रूप से उनका कतई हाथ नहीं था। वे नही जानते थे कि इस घटना का अत्यधिक प्रभाव उनके व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन की अंतरंग स्थिति पर पड़ने वाला है।

वह दिल्ली निशा को लेकर ही लौट सके। उमेश बाबू साहब के यहां पांच साल से अंगरक्षक का काम करता आ रहा था। उमेश ने इस अवधि में बाबू साहब से कुल एक हज़ार रुपये ही लिये थे। रुपयों की आवश्यकता उसे कभी पड़ी भी नही। जब गांव छोड़ने की बात आई, तब उसने सोचा कि क्यों न बाबू साहब से हिसाब करके बकाया रकम ले लें। अब वह अकेला नहीं है। उसपर निशा की जिम्मेवारी है। उसे अब दो के भरण-पोषण की व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए दिल्ली में छोटा-मोटा रोजगार तो करना ही पड़ेगा, और रोजगार केवल शारीरिक श्रम से नही चल सकता। यह सब सोचना उमेश को अच्छा नही लगा। उसने कल्पना भी नही की थी कि कभी उसे भी रोटी-दाल का हिसाब जोड़ना पड़ेगा। अब तक वह एक निहंग का निस्संग जीवन जी रहा था। उसने मन ही मन अनुमान लगाया कि यदि सौ रुपये महीने भी बाबू साहब दे देंगे तो उसका भला हो जाएगा। यही सोचकर उसने निशा को राजदेव के साथ दिल्ली भेज दिया।

गाड़ी में सवार होने तक राजदेव निशा का चेहरा नही देख पाये थे। उनके मन में निशा के प्रति किसी भाव का उद्रेक भी तब तक नहीं हुआ था। उनके मन मे निशा या उमेश के प्रति न तो कोई अनुरक्ति थी, न विरक्ति। उनकी दृष्टि में एक ऐसी घटना घट गई थी, जिसकी कल्पना उन्होंने कभी की नही थी। एक सवेदनशील व्यक्ति के नाते उन्होंने अमरनाथ के हाथों निशा की हत्या होने से बचा लिया। परिस्थिति ऐसी थी कि उन्होने निशा और उमेश को शरण दे दी। कदाचित् कोई भी विवेकशील व्यक्ति यही करता।

निशा घोर देहात की लड़की थी। दस साल की आयु मे ही उसे घर की चहारदीवारी में कैद कर दिया गया था। इस उम्र से बच्चो को होश आने लगता है। निशा जब होश में आई, तब तक वह पूरी तरह भूल चुकी थी कि आंगन के बाहर का हवा-पानी कैसा होता है। उसके घर के बिलकुल पास ही

मिडिल स्कूल था। पढ़ने की सुविधा थी। इसलिए मिडिल तक वह पढ़ चुकी थी।

फर्स्ट क्लास डिब्बे के जिस कम्पार्टमेण्ट में राजदेव को जगह मिली, वह बिलकुल खाली था। सामान आदि व्यवस्थित ढंग से रखने की चिन्ता में वे यह भी न देख सके कि निशा कम्पार्टमेण्ट के एक कोने मे सिर पर घूघट काढ़े सहमी-सिकुड़ी खडी है। हर बार राजदेव को स्टेशन तक छोड़ने के लिए उनके बड़े भाई पुष्कार और गांव के कई लोग निश्चित रूप से आया करते थे। लेकिन इस बार कोई नही आया। निशा को साथ लेकर जाने की बात, राजदेव के बड़े भाई पुष्कर को कतई पसन्द नही आई।

पटना के सब-डिविज़नल अफसर के पेशकार के रूप मे पुष्कर ने दो-दो रुपये लिए थे। उन्होंने जीवन भर पैसे को दांत से पकड़ा था। जब तक अपने पिता के जीवनकाल मे ही उनकी तीनों बेटियों की शादी नही हो गयी, तब तक वे संयुक्त परिवार मे बने रहे और ज्यों ही यज्ञ सम्पन्न हुआ, उन्होंने बटवारा दाखिल कर दिया। पिता श्यामसुन्दर अपने छोटे पुत्र राजदेव के हिस्से की जमीन स्वय जोतने लगे। दूसरा बेटा पशुपति घर मे रहकर भी संन्यासी था। पुष्कर ने पशुपति जैसे निस्सन्तान भाई को साथ रखने मे लाभ देखा और उससे पूछे बगैर उसका हिस्सा भी अपने अधीन कर लिया। बटवारे के बाद ही *उन्होंने पक्के की हवेली और पक्के का दालान पिटवा लिया। दस बीघा जमीन* भी खरीद ली। जाहिर है, जो कुछ वे कमाते रहे, पटना 'डेरा' मे खर्च करने के अतिरिक्त पाई-पाई बचाकर रखते रहे थे। पिता श्यामसुन्दर सारी बातें समझते थे। लेकिन वे मजबूर थे। उन्होंने बड़े बेटे के इस मत्स्य-न्याय को देखा और गम खाकर रह गये। उम्र अधिक हो चुकी थी। उन्होंने सोचा कि राजदेव का और उनका अपना हिस्सा भी सभाल सकने योग्य वे नही है। बेशक उन्हें पुष्कर के इस व्यवहार से भीतरी चोट पहुंची थी। वे समझ गये कि अधिक दिनों तक यह सब देखने-सुनने को बच नही सकेंगे। इसलिए उन्होंने अपनी सबसे छोटी बेटी का ब्याह करा दिया। शायद इसी के लिए उनके प्राण बचे हुए थे। बेटी के ब्याह के चन्द महीने बाद ही वे इस असार संसार को छोड़कर चल बसे।

बिल्ली के भाग्य से सिकहर टूटा। पुष्कर ने अपने पिता के हिस्से की जमीन तो हथिया ही ली, राजदेव की जमीन की देखभाल का जिम्मा भी उन्होंने अपने ऊपर ले लिया।

पुष्कर विचार से पूर्ण सनातनी और आचार से रूढ़िवादी और कर्मकाण्डी थे। उनकी दृष्टि में निशा विधवा थी। इसलिए उसे दूसरा विवाह करने का कोई अधिकार नहीं था। वे मानते थे कि ऐसा करके निशा और उमेश दोनों ने घोर पाप किया है। यह अनर्थ है, जिसे समाज बर्दाश्त नहीं कर सकता। पुष्कर वैसे भी मन ही मन राजदेव से चिढ़े रहते थे। कारण यह था कि राजदेव ने कभी उनसे सहायता की याचना नहीं की और इसके बावजूद वे देश के एक विख्यात दैनिक पत्र के विख्यात संयुक्त संपादक बन गये थे।

राजदेव जानते थे कि सूर्योदय होने से पूर्व ही पुष्कर पूरे गांव का चक्कर काट आये थे और सबसे कह आये थे कि राजदेव बहुत बड़ा कुकर्म कर रहे हैं, कि राजदेव धन के नशे में मत्त हो गये हैं, कि राजदेव को गांव-समाज की कोई चिन्ता नहीं है। इस बात से थोड़ी देर के लिए राजदेव को दुःख पहुंचा था। जिन लोगों ने उन्हें यह सूचना दी, उनसे राजदेव ने कहा था, "मैं क्या कुकर्म कर रहा हूं? इस गांव मे ऊंची जाति के कई लोग थे और है, जिन्होंने आठ-आठ, दस-दस साल की लड़कियों से असुर विवाह रचाया। उन लोगों ने अपनी पैंतीस, पैंतालीस और पचपन साल की आयु न देखी। फिर भी समाज की दृष्टि मे वे सुकर्मी बने रहे और आज सत्रह साल की एक लड़की को मौत के मुंह से निकालकर जीवन देने का मेरा प्रयत्न कुकर्म बन गया! मैं नहीं कहना चाहता कि लाल दिल्ली मे क्या कर रहा है। यह बात सभी को मालूम है। जिस विवाहिता पत्नी को लाल चालीस हजार दहेज के साथ अपने घर ले आया, उसकी वह पत्नी गांव में पड़ी जीवन के दिन गिन रही है और स्वयं लाल दिल्ली में रहकर मौज-मजा ले रहा है। भइया अपने बेटे को सुकर्मी समझते हैं, क्योंकि वह हजार-हजार रुपये इनकी हथेली पर रख देता है।"

प्रमोद दुर्गा पूजा की छुट्टियों मे घर आया हुआ था। वह अपने चाचा का अनन्य भक्त था। प्रमोद जब बहुत छोटा था, तभी से राजदेव उससे पुत्र-वत् व्यवहार करते थे। केवल प्रमोद अपने चाचा को स्टेशन तक छोड़ने आया था। जब वह पांव छूकर कम्पार्टमेण्ट से निकलने लगा, तब राजदेव ने उससे पूछा—"प्रमोद! तुमने तो सुना ही होगा कि भइया मेरे विरुद्ध क्या-क्या प्रचार कर रहे है!"

"हां, चाचा जी, मैंने सब सुना है।"

"क्या तुम भी वही समझते हो, जो तुम्हारे पिता कहते फिर रहे हैं?"

"नहीं चाचा जी! आप समाज के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे

हैं। यदि मैं आपकी जगह होता और उमेश का विवाह निशा से न हुआ होता, तो मैं स्वयं निशा का पाणिग्रहण करने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करता। मैं यह बात सोच-समझकर बोल रहा हूं, जबकि उमेश ने तो शायद बिना सोचे-समझे, प्रेम के वश होकर, यह कदम उठाया है।"

प्रमोद की बातें सुनकर राजदेव के कलेजे पर लदा हुआ हिमालय पहाड़ अचानक ही भहराकर दूर जा गिरा। उन्होंने संतोष की सांस ली। प्रमोद पांव छूकर डिब्बे से उतर पड़ा था। गाड़ी खिसकने लगी थी। वे कुछ देर तक खिड़की के बाहर का दृश्य देखते रहे। अचानक ही उन्हें निशा का ख्याल आया और वे गलियारे से होकर कम्पार्टमेण्ट में चले आये। निशा तब तक कोने में सहमी खड़ी थी। राजदेव ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा, "सीट पर बैठ जाओ' और देखो, यह घूंघट वगैरह अब नहीं चलेगा। तुम दिल्ली जा रही हो। गांव के तौर-तरीके गांव में ही रखती आओ।"...इतना कहकर राजदेव सीट के किनारे बैठ गये। निशा यथावत् खड़ी रही। राजदेव हंसते हुए उठे और निशा की बांह पकड़कर उसे अपने पास बैठाते हुए उन्होंने कहा, "घूंघट हटा लो। तुम मुझसे उम्र में बहुत छोटी हो। खूब हंसो। मुझसे बात-चीत करो।" निशा फिर भी ज्यों की त्यों बैठी ही रही। राजदेव ने उसकी ओर देखा। वह अपने दोनों हाथों की उंगलियों से आंचल का एक छोर मोड़ती और सीधा करती चली जा रही थी। राजदेव ने गौर किया कि निशा का नाम राका होना चाहिए था। उसकी उंगलियां लम्बी और गोरी थीं, बहुत ही कलात्मक! बेशक, नाखून की गन्दगी जाहिर करती थी कि काम करते-करते उसके दिन बीते हैं। और हथेली तथा उंगलियों पर ढट्टे पड़े हुए थे। बेतरतीब साड़ी में लिपटी होने पर भी निशा की देह-यष्टि से सौन्दर्य-पूर्ण रेखायें उद्‌भासित हो रही थीं।

राजदेव सीट की पीठिका के सहारे आंखें बन्द करके बैठ गए। उनके मन में तरह-तरह के विचार आने-जाने लगे। 'निशा को साथ देखकर ललिता क्या सोचेगी? ललिता करुणामयी है। उसने सेवा को ही धर्म मान लिया है। किसी के प्रति अहित की बात सोचने की वह कल्पना तक नहीं कर सकती। यदि उसे अपने नुकसान में दूसरे की भलाई नजर आती है, तो उस स्थिति को भी वह सहर्ष, सोत्साह स्वीकार करने के लिए तत्पर रहती है। किन्तु, ललिता को यह सह्य नहीं हो सकता कि कोई मेरे और उसके बीच आ जाय। इस मामले में ललिता नितांत एकाधिकारवादिनी है। वह दिन-रात घर के काम-काज

में लगी रहती है। ऊपर से अतिथियों का सेवा-सत्कार भी उसे ही करना होता है। फिर भी, वह मेरा व्यक्तिगत काम किसी को नहीं करने देती। यहां तक कि बेटी नन्दिनी भी मेरे कपड़े लाकर, मुझे दे देती है या मेरे कपड़े रख देती है, तो ललिता के मन में कहीं न कहीं दुख के बुलबुले उठने लगते हैं। ललिता का स्वास्थ्य वर्षों से ठीक नहीं रहता है। जिस कारण मैं हमेशा चाहता हूं कि उसे आराम मिले। यही सोचकर नन्दिनी या निवेदिता को जरूरत पड़ने पर पुकार लेता हूं। लेकिन, देखता हूं कि उनकी जगह ललिता हाजिर है। उस समय ललिता के चेहरे पर अजीब तरह की वेदना-मिश्रित मुस्कराहट होती है। उसकी आंखें मानो कहती होती हैं—'क्या मैं नहीं हूं, जो बेटियों को बुलाते रहते हो।' अब मैं अजनबी, जवान और खूबसूरत लड़की को साथ लिए जा रहा हूं। ठीक है, उमेश को प्रेस में काम दिलवा देंगे। वह कहीं एक कोठरी किराए पर ले लेगा। दोनों वहां रह लेंगे"

पता नहीं, राजदेव कब तक इस तरह के चक्रवात में घिरे रहे और न जाने कब तक घिरे गोते खाते रहते कि अचानक ही पांव पर हाथ का स्पर्श पाकर वे चौंक उठे। उन्होंने देखा कि निशा उनके पांव के पास बैठी दोनों पांवों पर अपनी हथेलियां रखे, सिसक-सिसक कर रो रही है।

"यह क्या? क्यों रो रही हो? उठो-उठो। यह रोना-धोना मुझे पसन्द नहीं।"—राजदेव की चिन्ताधारा आश्वासन में बदल गई। उन्होंने ज्यों ही उसकी दोनों बाहें पकड़कर निशा को ऊपर उठाया, त्यों ही निशा के सिर का आंचल नीचे खिसक गया। राजदेव को लगा, जैसे बादलों से घहरानी अंधेरी रात में जोरों की बिजली चमक उठी हो। ऐसा दमकता हुआ रूप था, जैसे अभी-अभी जलती हुई चिनगारियों पर की राख फूककर उड़ा दी गई हो। निशा के होंठ, नाक, आंख, भवें, कपोल इतने सुघड़, सरस, सुन्दर और आकर्षक थे, मानो ब्रह्मा ने निश्चिन्त होकर स्वयं अपने हाथों से उन्हें गढ़ा हो। राजदेव ब्रह्मा की इस क्रूरता को देखकर मन ही मन कह उठे—'इतना रूप! और इसके चारों ओर ऐसा जघन्य और क्रूर परिवेश!' उन्होंने निशा को बलपूर्वक उठाकर सीट पर बिठा दिया और अपनी रूमाल से उसकी आंखों के आंसू पोंछते हुए बोले, "तुम्हारे दुख के दिन समाप्त हो गए। दिल्ली में उमेश को नौकरी मिल जाएगी। वहां तुम दोनों के जीवन में दखल देने वाला कोई न होगा। कोई यह भी नहीं पूछेगा कि तुम क्या थी और कहां से आई हो!"

निशा को याद नही, उसके किसी बुजुर्ग ने, उसे इतना स्नेह दिया हो। राजदेव को रतनपुर गाव का बच्चा-बच्चा सम्मान की दृष्टि से देखता था। निशा के कानों तक भी राजदेव की ख्याति रंग-बिरंगी कहानी बनकर पहुची थी। इतने बड़े आदमी का ऐसा सहज स्नेहसिक्त व्यवहार देखकर निशा भावातिरेक से विह्वल हो, फूट-फूट कर रोने लगी। राजदेव विचलित हो उठे। देखने को राजदेव ने बहुत दुख देखा था, भोगा था। वह दुख ऐसा था, जो कलेजे को बेध सकता था। मानसिक सतुलन डिगा सकता था। शरीर को स्वाहा कर देने की मजबूरी पैदा कर सकता था। यहां तक कि दुख के कारण के प्रति प्रतिरोध की भीषण ज्वाला जागृत कर सकता था। किन्तु निशा के रुदन ने उन्हे उससे भी भीषण स्थिति मे डाल दिया। ऐसा रूप और इतना सारा दुःख ! राजदेव का तन-मन भयकर विषाद के भंवर मे पड़कर खंड-खंड होने की स्थिति मे जा पहुचा। उस विषाद का स्वरूप ऐसा था जो उत्ताल तरंगों के समान मर्यादा के कगारो को ही आत्मसात् करने के लिए बेचैन हो उठता है। गनीमत हुई कि निशा के अलौकिक रूप ने ही राजदेव के मन मे गहरा प्रश्न-चिह्न पैदा कर दिया—'अमरनाथ का प्रतिशोध क्या क्षम्य नही है ? यदि यह इतनी रूपवती न होती, तब भी क्या मैं इसके लिए इतना कातर, इतना द्रवित, इतना बेचैन हो पाता ? लेकिन नहीं, मैं तो इसे बिना देखे ही शरण दे बैठा था। प्रेम का अतिरेक यदि अध्यात्म की कड़ी है, तो उसी प्रेम का अतिरेक कभी-कभी कर्तव्याकर्तव्य के बोध को भी निगल जाता है। जो प्रेम व्यक्ति को कर्तव्य और दायित्वबोध से विरत कर दे, वह प्रेम मात्र एक भूख है।'

राजदेव स्थिर-चित्त हो गए। उन्होने थर्मस से चाय निकाली और निशा से पी लेने का आग्रह किया। निशा ने आना-कानी नही की। आधी चाय पीते-पीते उसका रुदन थम गया था। राजदेव अपनी बंडी खोलकर खूंटी पर रखने ही जा रहे थे कि निशा ने जल्दी मे उनके हाथ से बंडी ले ली और उसे खूंटी के सहारे लटका दिया। निशा की यह तत्परता राजदेव को अच्छी लगी। बोले, "खाने में क्या पसन्द है ? अगले स्टेशन पर बताना होगा।"

"कुछ भी खा लूंगी "मांस-मछली छोड़ कर।"

निशा की बात सुनकर, राजदेव ने उसकी ओर गौर से देखा और किंचित् हंसकर कहा, "साधुओं जैसे स्वाद रखती हो। यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैं हर चीज का भक्षण कर लेता हूं। अच्छा तो ठीक है। मैं भी शाकाहारी भोजन मंगवाऊंगा।"

भइया को सुबुद्धि दें। तीन साल पहले, जब मेरे पति जीवित ही थे, भइया ने मुझे चुपचाप रेशम की साड़ी, पाउडर, क्रीम के डिब्बे लाकर दिए। जब मैंने ले लिया, तब बोले—'किसी से कहना मत कि मैंने दिए हैं।' उनकी यह बात सुनकर ही मेरा मन आशंकाओं से भर गया। उसके बाद वे कभी मिठाई, तो कभी तेल की शीशी, कभी पेटीकोट, तो कभी पैसे दे दिया करते थे। एक दिन मैंने हिम्मत करके इन्कार किया तो उन्होंने कहा—'मना मत करो। मैं जो कुछ कमाता हूं, सब तुम्हारा है।' यह कहकर, उन्होने जबरदस्ती मुझे पकड़कर अपनी बांहों में भर लिया। मैं छटपटाती रही। डर के मारे चीख भी नहीं निकल सकी। संयोग से उसी समय बाहर खटका हुआ और भइया ने मुझे छोड़ दिया। पहलवान जी वहां आ पहुंचे थे। उनको देखकर भइया उलटे उन्हीं पर बरस पड़े ..

"'इस बेचारी को कोई नहीं देखता है। तुम गुलछर्रे उड़ाते हो। शंकर तो पागल ही है। सब कुछ मुझे करना पड़ता है। जरा इसका ध्यान रखा करो।' यह कहकर वे तेजी से बाहर निकल गए। पहलवान जी ने मेरे हाथ में पड़े रुपये देखे। मैं रुपये पकड़े गुमसुम खड़ी रही। उसके बाद से, मैं हमेशा भइया से भागती रही। भइया ने फिर तीन बार उसी तरह की हरकत की। मैं ईश्वर की कृपा से बचती रही कि तभी मेरे पागल पति का, ट्रक के नीचे दबकर, देहान्त हो गया। उनका मैं कुछ नहीं जानती। उन्होंने कभी मेरा स्पर्श तक नहीं किया। इसकी सुधि भी शायद उन्हें नहीं थी। कभी-कभी वे मिलने आते, तो बच्चों की तरह बैठकर केवल हंसा करते। उनके मरने पर मुझे बहुत दुःख हुआ। पहलवान जी शुरू से ही मेरे साथ सहानुभूति रखते थे। उन्होंने मेरा दिल दुखाने की कभी कोशिश नहीं की। इस घर में आते ही मैं उनसे घुल गई थी। इसलिए, अब भइया की हरकतों के बारे में भी उन्हें सब कुछ बता देती। विधवा होने के बाद भइया ही नहीं, पड़ोस के तीन-चार नौजवान भी, मेरे घर का चक्कर लगाने लगे। कभी-कभी कोई घर में भी चला आता। एक दिन मैंने पहलवान जी से अपने मन में समाए हुए भय की चर्चा की।"

"ठीक है, ठीक है। मैं समझ गया। तुम बताना नहीं चाहती कि उमेश ने…।"

"नहीं-नहीं, वह बात नहीं है।" निशा ने राजदेव की बात काटते हुए कहा, "ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे मैं आपसे छिपाना चाहती हूं।…बात यह है कि अभी-अभी गंगा किनारे कार्तिक-स्नान का मेला लगा था। पहलवान जी मुझे स्नान कराने के बहाने गंगा जी ले गए। वहां से हम लोग बेगूसराय का चक्कर काटते हुए गांव लौटे। भइया हम लोगों की ही बाट जोह रहे थे। पहलवान जी को देखते ही भइया ने पूछा, 'कहां ले गए थे बहू को?' पहलवान जी ने आव देखा न ताव और कह दिया, 'शादी कराने।'

"'क्या कहा? किसकी शादी और किससे?' भइया खाट से उठकर गरजते हुए बोले। पहलवान जी ने तो पहले से ही सख्त से सख्त जवाब देने का तय कर लिया था। सो उन्होंने उलटकर जवाब दिया— 'निशा की शादी, और वह शादी मेरे साथ हुई है। ज्यादा उछलो मत, नहीं तो टांग तोड़ कर रख दूंगा। तुम्हारे कुकर्मों का कच्चा चिट्ठा मैं जान चुका हूं।'

"पहलवान जी, की बात सुनकर भइया उस समय कुछ नहीं बोले। बल्कि वे पहलवान जी का क्रोध देखकर डर के मारे चुपचाप खाट पर जा बैठे। लेकिन, रात एक बजे के आसपास उन्होंने गांव के अपने हिमायतियों को इकट्ठा कर लिया। फिर जो कुछ हुआ, वह आप जानते हैं।"

चार

जो अन्देशा था, वही हुआ। राजदेव के साथ निशा को देखकर और उसका परिचय जानकर ललिता माया-ममता से भर उठी। बड़े लाड़ से निशा को वह उसके कमरे तक ले गई। स्नान-गृह आदि दिखा दिया। संक्षेप में शहर के तौर-तरीके समझा दिए और वह फिर राजदेव के पास चली आई।

राजदेव उस समय अपने बड़े लड़के राम से कह रहे थे, "नन्दिनी को भी साथ ले लेना। निशा गांव की लडकी है। संकोची स्वभाव की और शर्मीली।"

"कहां भेज रहे हो राम को?" ललिता का स्वर धीमा था। लेकिन उससे तीव्र विरोध और दवे हुए क्रोध की ध्वनि आ रही थी। राजदेव अपनी पत्नी की प्रत्येक भाव-भंगिमा से परिचित तो थे ही, वे ललिता की आवाज़ से ही उसमें निहित व्यंजना को समझ लेते थे। उन्हें लगा कि भीतर जाकर शायद निशा ने कोई नादानी कर दी है। इसीलिए समझाने के स्वर में बोले, "निशा के पास यहां के लायक वस्त्र नहीं हैं। राम से कहा है कि उसे बाजार ले जाकर मनपसन्द कपड़े खरीद दे। नन्दिनी भी साथ चली जाएगी।"

"राम बाजार नहीं जाएगा।" ललिता ने चीख कर कहा। राजदेव सन्नाटे में आ गए। वे समझ नहीं पाये कि अचानक ललिता को हो क्या गया है। तभी उन्होंने देखा कि ललिता का क्रुद्ध स्वर सुनते ही राम चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया। ललिता राम को बाहर जाते देखती रही। राजदेव कुर्सी से उठते हुए बोले, "कभी-कभी मैं तुम्हारे प्रतिपल परिवर्तित मन को महसूस तो कर पाता हू, लेकिन उसका कारण नहीं समझ पाता हूं।"

"समझने की आवश्यकता भी नहीं है। पहले जाकर नहा-धो लो। निशा के लिए साड़ी वगैरह की चिन्ता मुझ पर छोड़ो। तुम मर्द हो। मर्द की तरह बाहर का काम देखो।"

राजदेव चुपचाप नहाने-धोने चले गये। वे जानते थे कि ललिता के साथ सवाल-जवाब करने का अर्थ मूक महाभारत छेड़ना है। ऐसे अवसरों पर वे खामोशी में ही अपनी और वातावरण की बेहतरी देखते थे। ललिता की जिस खिलखिलाहट ने राजदेव के जीवन को कभी आन्दोलित कर दिया था, वह

खिलखिलाहट समय और समाज के प्रहार से अतीत की गूंज बनकर रह गई थी।

राजदेव जानते थे कि ललिता के दर्द का रहस्य क्या है। दोनों के विवाह का विरोध, विभिन्न कारणों से, दोनों घरों में हुआ था। राजदेव के पिता कालेज मे पढ रहे अपने पुत्र को पूंजी मानते थे। ललिता के साथ विवाह में उन्हें उस पूंजी का ब्याज नही मिला। ललिता जब दुल्हन बनकर राजदेव के घर आई, तब उसका स्वागत अनचाहे मेहमान जैसा हुआ। बातों ही बातों में ललिता को परोक्ष रूप से समझा दिया गया कि उसकी ससुराल के पुरुष और महिलाएं उसे एक धूर्त और हिसाबी शहरी औरत के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते। उसने अपने मां-भाई का बोझ हलका करने के लिए राजदेव को बड़ी चतुराई से फांस लिया। वह शादी के पूर्व ही राजदेव के साथ पत्नी होने की अनुभूति प्राप्त कर चुकी है, इसीलिए नववधू का सत्कार और शिष्टाचार पाने की अपेक्षा उसे नही करनी चाहिए।

वर्षों तक राजदेव बेसहारा होकर क्रूर समय का शासन सहते रहे। इधर ललिता अपनी ससुराल और मायके में व्यग्य-बाण से बिंधती रही। विपन्नता और सामाजिक प्रतिष्ठा में सांप-नेवले का सम्बन्ध है। पति विपन्न था, तो ललिता को भी हर तरफ से अवमानना और उपेक्षा मिलती रही। उसके मायके में केवल मुकेश इस सम्बन्ध के पक्ष में थे। वे भी कदाचित् इसीलिए कि सस्ते में सम्बन्ध का निर्वाह हो गया। सम्बन्ध होने के बाद उनकी दृष्टि भी बदल गई। उन्होने सोचा था कि राजदेव एम० ए० पास करते ही बहुत बड़ा हाकिम बन जायेगा। लेकिन जब उन्होंने देखा कि नौकरी की तलाश में राजदेव के कई चप्पल घिस गये, तब लच्छेदार सूत्र वाक्यों की जगह उनके मुंह से राजदेव के सन्दर्भ में लाक्षणिक वाक्य क्षरित होने लगे।

राजदेव को याद है, जब वह काशी के एक दैनिक में अस्थायी तौर पर उप-सम्पादक था, ललिता अपने मायके में अस्वस्थ हो गयी। उसके पेट मे दर्द रहने लगा। पास के रेलवे स्टेशन के बाजार मे एक बंगाली डाक्टर राखाल रहता था। किसी को पता नहीं कि वह डाक्टर था भी या कम्पाउण्डर, या दोनों में से कुछ भी नही। "निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।" ललिता की वृद्धा परवश मां ने उसी बंगाली बाबू से ललिता का इलाज शुरू करवाया। राखाल ने अनाप-शनाप दवा देनी शुरू की। रोग घटने की बजाय बढ़ता ही चला गया।

कभी-कभी तो ऐसा होता कि ललिता दर्द की बेचैनी से रात-रात भर तड़पती रह जाती। राखाल सुई देकर उसे सुला देता था।

स्थिति ऐसी हो गयी, फिर इलाज के पैसे भी खत्म हो गये। उन्हीं दिनों मुकेश गाव आये हुए थे। उन्होंने डाक्टर से ललिता के रोग के बारे में पूछताछ शुरू की। राखाल जानता था कि मुकेश सरकार का बड़ा हाकिम है। रोग का निदान वह खुद भी नही पा सका था। फिर मुकेश को क्या बताता! इसलिए उसने डरकर कह दिया कि ललिता की आत में कैंसर हो गया है। दरअस्ल, डाक्टर चाहता था कि मुकेश ललिता को अपने साथ शहर ले जाय, ताकि उसकी जान बच सके।

मुकेश ने ललिता को शहर ले जाने की बजाय राजदेव को तार भेजकर काशी से बुलवा लिया और कहा कि वह अपनी पत्नी को काशी या पटना ले जाकर इलाज करवाये। उन दिनों राजदेव की आर्थिक हालत ऐसी थी कि इलाज करवाना तो दूर, एक बच्चे और पत्नी को साथ भी नही रख सकता था। फिर भी, राजदेव अपने छोटे परिवार को ले गया। उस दिन राजदेव ने पहली बार मुकेश का रूप देखा।

काशी ले जाने पर राजदेव को मालूम हुआ कि ललिता को कैंसर नही, एपेन्डीसाइटिस का दर्द है।

ललिता चारों ओर से निराश होकर अपने स्वाभिमान के कवच में सिमट आई। उसके होठों की खिलखिलाहट रहन-सहन की सादगी में तिरोहित हो गई। उसके व्यवहार का चापल्य कर्मठता की वेदी पर चढ़ गया और उसके मुंह से निकले हुए शब्दों का सहज अर्थ, उसकी भंगिमा और मुद्रा में खो गया। उसके इस विभक्त व्यक्तित्व की अनुभूति केवल राजदेव को होती थी। वे जानते थे कि ललिता एक ऐसी घनीभूत वेदना की जीती-जागती प्रतीक है, जिसे अभिव्यक्ति का अवसर विघाता ने कभी नहीं दिया। उसकी वेदना की अभिव्यक्ति के एकमात्र माध्यम थे राजदेव। यही कारण था कि जब कभी क्रोध या दु.ख के चलते ललिता को अभिव्यक्ति का अवसर मिलता, वह राजदेव के समक्ष फूट पड़ती थी।

रात के समय निश्चिन्त होने पर ललिता ने धीमे से कहा, "एक बात मानो तो कहूं।"

"बोलो!" राजदेव समझ गये कि बात सामान्य नही होगी। भरे हुए बादल की-सी ध्वनि से ही राजदेव ने अनुमान लगा लिया कि सामना कठिन

परिस्थिति से है। ललिता को जब कभी कोई गम्भीर बात कहनी होती, या उसे राजदेव की इच्छा के विरुद्ध जाना होता, वह बहुत धीमे स्वर में ऐसी ही शैली में बात शुरू करती थी। ललिता ने पूछा, "उमेश जी कब तक आएंगे ?"

"कल-परसों तक आ जाना चाहिए।"

"तो उनके आने के पहले ही एक छोटा-सा मकान ठीक कर दो। जब वे आ जाएंगे, तब उन्हें और निशा को उसी मकान में जाकर रहने को कहो।"

राजदेव चुपचाप लेटे रहे। थोड़ी देर बाद ललिता ने ही बात जारी रखी, "मैं नहीं चाहती कि हमारा परिवार गांव-समाज का कोपभाजन बने।"

"इसमें कोपभाजन बनने की क्या बात है ?" राजदेव ने किंचित् ऊब के स्वर में पूछा।

ललिता की आवाज तेज हो गयी,

"हमें दो-दो बेटियों का सम्बन्ध करना है। समाज से बिगाड़कर हम कहां जायगे ? तुम्हारे बड़े भाई तक इस बात से नाराज हो गये हैं।"

"वे खुश कब थे ?"

"यह मैं नहीं जानती। निशा इस घर में नहीं रह सकती।"

उस रात राजदेव सो नहीं पाये। कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं, जो घटित होते ही व्यक्ति के जीवन को इस कदर आलोड़ित-उद्वेलित कर देती हैं कि उसकी अनुभूति से वह लाख कोशिश करने पर भी मुक्त नहीं हो पाता है। यह अनुभूति और एहसास उसके जीवन को ऐसा अर्थ दे जाता है कि उसे ओढ़ने के बाद आदमी चैन से रह नहीं पाता और उसके अभाव में भी जीवन निरर्थक बन जाता है। संवेदनशील व्यक्ति के लिए निरर्थक जीवन असह्य होता है। राजदेव चाहते थे कि ललिता उनसे खुलकर बातें करे—तर्कसंगत बातें। और ललिता थी कि वह जीवन को, पारस्परिक सम्बंध को तर्कसंगत मानती ही नहीं थी। उसकी दृष्टि में यह सब मात्र संयोग या घटना थी।

राजदेव रात भर इसी प्रकार के तर्क-वितर्क में पड़े रहे। वे एक के बाद दूसरे नतीजे पर पहुंचते रहे।"'ठीक तो है, मेरा सम्पूर्ण जीवन भी तो घटनाओं का क्रम ही है। ललिता भी एक ऐसी ही घटना है। मेरे जीवन को एक ऐसा ही अर्थ मिला जिसे ओढ़े बगैर मैं रह नहीं सकता। बल्कि ललिता मेरे लिए अर्थ से भी सूक्ष्म मात्र अनुभूति है, ठीक हवा के समान, जिसे मैं देखता नहीं, देख पाता नहीं, देखने का स्मरण तक नहीं रहता। लेकिन, यदि हवा संसार से

तीन-चार मिनट के लिए भी गायब हो जाय, तो क्या हो" वह संयोग, वह घटना कितनी भयानक होगी ?...

एक सप्ताह बीत गया। उमेश का कहीं पता नहीं था। राजदेव को लगने लगा, जैसे हर रोज घर के वातावरण में तनाव बढ़ता जा रहा है। पांच-छह रोज बीतने पर एक दिन निवेदिता ने अवश्य यह सूचना दे दी थी कि आज मां ने राम भैया को बहुत डांटा है। निवेदिता से ही राजदेव को यह भनक भी मिली कि निशा को घर के बाहरी बरामदे में आने-जाने से मना कर दिया गया है। राजदेव समझ नहीं पाये कि इस क्रिया-प्रतिक्रिया का कारण क्या है। जब ललिता ने उस दिन तीखे स्वर में पूछा था कि निशा के लिए मकान ठीक हुआ या नहीं, तब राजदेव खीझ उठे थे, "क्या मकान-मकान की रट लगा रखी है? देहात से आई इस अनजान अकेली लड़की को किस प्रकार किसी मकान में ले जाकर रख आऊं ?"

"तो उमेश आता क्यों नहीं ? कहां मर गया ? तुम तो कह रहे थे कि चार-पांच रोज में आ जायगा।"

"मैं यहां बैठे-बैठे कैसे बता दूं कि उमेश को क्या हो गया ! हो सकता है, बाबू साहब ने हिसाब साफ न किया हो।"

"यह भी तो हो सकता है कि अपनी बला तुम्हारे सिर थोपकर वह निश्चिन्त हो गया हो !"

"कैसी बात करती हो ! तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है ? क्या उमेश ने पहले से योजना बनाकर उस रात निशा को अपने भाई से पिटवाया था ?"

ललिता, जो पहले से ही उद्विग्न थी, राजदेव की बात सुनते ही फूत्कार कर उठी, "दिमाग मेरा नहीं, तुम्हारा खराब हो गया है। तभी तो एक खूबसूरत जवान लड़की को देखा और फिसल गये। यह नहीं सोचा कि इसका परिणाम क्या होगा ?"

"ओह ललिता ! तुम विश्वास क्यों नहीं करती कि जिस समय मैंने निशा को साथ लाने का निर्णय किया, उस समय तक मैंने इसका मुंह भी नहीं देखा था। यह भी नहीं जानता था कि यह काली-कलूटी है या"'तुम सीधी-सी बात क्यों नहीं समझती ?"'यह सब कुछ अचानक ही हो गया।"

"अचानक ही सब कुछ हो गया तो इसे यहां से भी कल अचानक ही किसी दूसरी जगह रख आओ।"

"कहां रख आऊं ? किसके साथ रख आऊं ? जरा सोचो तो सही !" -

"मुझे सोचने को क्यों कहते हो ! तुम...क्या सोचकर इस लड़की को गांव से उठाकर यहां ले आए ? अगर उमेश बाबू नहीं आए, तो क्या निशा को जीवन भर अपने साथ ही रख लोगे ?"

ललिता के तेवर देखकर राजदेव स्तम्भित रह गए। [illegible] जीवन में बहुत दुख देखे थे। एक समय था, जब [illegible] पाता था। लेकिन अब स्थिति बदल चुकी थी। [illegible] नहीं थी। निशा जैसी पांच-दस लड़कियों का [illegible] हो सकता था। फिर ललिता इस बेसहारा लड़की [illegible] ! पूछती है, क्या सोचकर इसे दिल्ली उठा लाए [illegible] ही किया जाता है ! परमार्थ और धर्म का [illegible] नहीं जाता। राजदेव के मन में आया, [illegible] कारण पूछें। वह न बताए तो उसे [illegible] थे, इसका नतीजा ठीक नहीं होगा। [illegible] कोई लाभ नहीं होने वाला है। [illegible] बेसहारा नहीं छोड़ सकते थे। [illegible] आधार हुआ करती है।

में उन्हें उत्साह और आनन्द की अनुभूति ही मिली। स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में उन्होने ऐसे जोखिम भरे काम किए कि किसी भी घड़ी मृत्यु उनका वरण कर सकती थी। सन् ४२ के अक्टूबर को जब टोमी जवान टैंक में सवार होकर मुजफ्फरपुर शहर में गश्त लगा रहे होते थे, तब राजदेव ने तीन नौजवानों के साथ गांधी जयन्ती का जलूस निकाल देने का साहसिक काम किया था— यह जानते हुए कि टैंक के चक्के में लगी लौह-पट्टियां उनकी हड्डी-पसली एक कर दे सकती हैं। उस समय उनके मन में लेशमात्र भी घबराहट नहीं आई थी। बिना खाए-पीए, मीलों-मील तक, वह भी अंधेरी रात मे, गले तक पानी मे चलते हुए आज़ादी को खोज मे भटके फिरे थे। उनके तलवों में छेद हो गए थे। फिर भी, उन्होंने हिम्मत नही हारी। लेकिन, अब जब कभी ललिता बीमार होती और उसकी तबीयत बहुत बिगड़ जाती, तो उनके हाथ-पांव फूल जाते।

राजदेव ने तत्काल अपने कनिष्ठ सहयोगी को बुलाकर अग्रलेख पूरा कर देने का आग्रह किया। लेख के लिए आवश्यक सामग्री भी उन्हे दे दी।

घर पहुंचते ही राजदेव सीधे अपने शयन-कक्ष में पहुंचे, जहां ललिता बिस्तर पर अर्ध-विक्षिप्त सी पड़ी हुई थी। नन्दिनी ने डाक्टर को बुला लिया था। राजदेव को देखते ही डाक्टर ने कहा, "इन्हे ज़ोरों का कोई सदमा लगा है, भीतर से कमजोरी है, इसलिए बरदाश्त नही कर सकी। मैंने सुई लगा दी है, ताकि ये सो जायं। शोरगुल न हो। सुबह से जो दवा चलेगी उसका नुस्खा यह रहा। इनके खान-पान पर ध्यान दीजिएगा।" यह कहकर डाक्टर ने नुस्खा राजदेव की ओर बढ़ा दिया। राजदेव की नजर कमरे के कोने में सिकुड़ी सहमी खड़ी छोटी बेटी निवेदिता पर पड़ी। उसकी सिसकियां बंधी हुई थीं। नन्दिनी का चेहरा देखने से लग रहा था कि वह भी रोती रही है। उनकी ढूंढती हुई नजरें कमरे के चारों ओर और कमरे के बाहर तक कुछ देर घूमती रहीं। ललिता की दशा देखकर राजदेव में जितनी बेचैनी और घबराहट थी, उससे कहीं अधिक निशा को वहां उपस्थित न देखकर उन्हे आश्चर्य हुआ। डाक्टर को बाहर छोड़कर जब वे घर के भीतर जाने को हुए तब उन्होंने बेटी नन्दिनी से पूछा, "क्या हो गया था, तुम्हारी मां को ?"

नन्दिनी कुछ नही बोली। सिर झुकाए खड़ी रही। न जाने क्यों, कौतूहल की जगह राजदेव के मन में तरह-तरह की शंकाएं कौंध गईं। उन्होने दुबारा प्रश्न किया। नन्दिनी फिर भी खामोश रही। राजदेव नन्दिनी को दरवाजे पर

ही छोड़कर तेजी के साथ उस कमरे में पहुंचे, जिसमें निशा रहती थी। कमरे में पहुंचते ही जैसे उनके पांवों को किसी ने जकड़ लिया। वहां का दृश्य देखकर वे सकते में आ गए।

निशा फर्श पर औंधी पड़ी सिसक रही थी। हीरामन निशा के पास बैठा टुकुर-टुकुर देख रहा था। राजदेव हतप्रभ हो उठे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था, कि यह सब क्या हो रहा है। मन में यह शंका बलवती हो उठी कि हो न हो किसी कारणवश ललिता निशा पर बरस पड़ी है, जिसके चलते यह सब कुछ हुआ है। उन्होंने झुककर निशा को उठाया। राजदेव पर नजर पड़ते ही निशा उठ खड़ी हुई और फफककर रोती हुई राजदेव की देह पर झूल गई। राजदेव इस स्थिति के लिए तैयार नहीं थे। वे घबराहट से भर गए कि कहीं निशा के रोने की आवाज सुनकर ललिता की नींद न टूट जाय। इसलिए निशा की पीठ पर थपकी देते हुए आश्वासन के स्वर में बोले—

"घबराओ नहीं। ललिता कभी-कभी प्यार से भी बिगड़ उठती है। उसकी बात का बुरा नहीं मानना चाहिए। वह तुम्हारी मां जैसी है।"

राजदेव की बात सुनकर निशा के आंसुओं का बांध टूट गया। वह और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। राजदेव ने समझाया, "ललिता को नींद की सुई दी गई है। उसकी तबीयत बहुत खराब है। तुम्हारे रोने की आवाज सुनकर उसकी नींद टूट जाएगी। ललिता को स्वस्थ होने दो। उसके बाद ही मैं तुम्हारी स्थाई व्यवस्था कर दूंगा।"

निशा का रुदन घिग्घी में बदल गया। कुछ देर बाद वह संभलकर अलग खड़ी हो गई। अब जाकर राजदेव ने निशा को गौर से देखा तो सन्न रह गए। निशा का ब्लाउज कई स्थलों पर फट गया था। देह पर की साड़ी भी नुची हुई और अस्त-व्यस्त हो रही थी। उसके चेहरे और गरदन के पास कंधे पर खरोंचें पड़ी हुई थीं। यह सब देखकर राजदेव का मन हाहाकार कर उठा।...

'तो क्या यह सब ललिता के हाथों हुआ है?'...राजदेव के मन में शंका उठी कि तुरंत ही वहीं समाधान भी हो गया—'ललिता जैसी करुणामयी ऐसा कर ही नहीं सकती। फिर यह सब किसने किया? क्यों किया?' न जाने क्यों, अपनी प्रज्ञाशक्ति से प्रेरित होकर राजदेव ने हीरामन से पूछा, "राम कहां है?"

"भैया यहीं भाग गया।" हीरामन ने सहज भाव से कह दिया। राजदेव

को लगा कि घर में सबसे अधिक आश्वस्त हीरामन ही है। ऐसा सोचकर उन्होंने पूछा, "यह सब क्या हो रहा है ?" पिता के इस प्रश्न पर हीरामन उठ खड़ा हुआ और पास आता हुआ बोला, "बाबू जी, राम भैया निशा दीदी के कमरे में घुसकर इनके साथ उठा-पटक कर रहे थे। निशा दीदी की चीख-चिल्लाहट सुनकर मां यहा आ गई। मा को देखते ही राम भैया मां को धक्का देकर घर से बाहर भाग गए।"

क्षण भर में ही राजदेव की समझ मे सारी बात आ गई। उन्हें लगा जैसे वे कटघरे में खड़े हैं और निशा की उंगलियां उनकी ओर उठी हुई हैं। बहुत देर तक वे जड़वत् खड़े रहे। क्रोध, घृणा और ग्लानि के अतिरेक से उनकी आखो मे खून उतर आया। गनीमत हुई कि उस समय राम वहा मौजूद नहीं था। धीरे-धीरे ललिता की बातों का अर्थ उनकी समझ मे आने लगा। ललिता उनसे बार-बार कहा करती थी कि निशा के लिए जल्दी से जल्दी अलग मकान ठीक कर दिया जाय। राजदेव अपने बड़े लडके राम के चारित्रिक पतन से परिचित थे। लेकिन, राम मर्यादा का उल्लघन कर पाशविकता की इस सीमा तक जा पहुचेगा, इसकी कल्पना उन्होने कभी नही की थी। वे अपने पुत्र की हरकतों की कल्पना मात्र से ही काप उठे। उन्होंने अनुभव किया कि निशा और ललिता की वेदना के जिम्मेदार वे स्वयं हैं। कुछ सोचकर राजदेव ने आगे बढकर निशा के कन्धे पर हाथ रखा और कहा, "जो कुछ हुआ उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं। कसूर मेरा ही है। मुझे अपनी सामर्थ्य और शक्ति को तोलकर बोझ उठाना चाहिए था। मैं तुम्हे पहले तो ले आया, लेकिन तुम्हे आश्वस्त और निश्चिन्त करने का मैंने कोई प्रयत्न नही किया।" इस बार निशा के मुह से आवाज़ निकली, "मैं ही अभागिन हू बाबू जी। मैं तो आपसे पहले ही कह चुकी हूं कि मेरे पाव ही खराब है। जहा जाऊगी, वही जगह नरक बन जाएगी।"

राजदेव उस रात सो नही पाए, ललिता के पास ही बैठे रह गए। सुबह होश आने पर ललिता ने पति के हाव-भाव से ही जानना चाहा कि उन्हे कल की घटना के बाबत कितना-कुछ मालूम है। राजदेव की आकृति से ही वह सब कुछ समझ गई। उसने राजदेव का हाथ पकड़कर कहा, "मैं बार-बार कहती थी कि निशा के लिए कहीं मकान ठीक कर दो। तुम झल्ला उठते थे। देख लिया न कि एक अबोध लड़की की क्या दुर्दशा हुई ! खैरियत हुई कि मैं समय पर पहुंच गई। राम पर जैसे भूत सवार था। क्या करू, समझ

में नहीं आता है। राम उन दिनों पैदा हुआ, जब हम लोग घोर दुखमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। जब हमें किसी ओर से भी सहारा नहीं मिल पा रहा था। जब हम सुबह खाकर शाम की चिन्ता में बेचैन रहा करते थे। न जाने वह अनागा कहां से यह सब संस्कार ले बैठा! उसे बाप का प्यार तो नहीं ही मिला, अब सारे संसार का अभिशाप बटोरता फिरता है।"

"प्यार का मतलब यह तो है नहीं कि दिन-रात राम का नाम जपता रहूं!"—राजदेव ने शांत स्वर में कहा।

ललिता शायद इसी उत्तर की प्रतीक्षा में थी। बोली, "नाम जपने को कौन कहता है! मैं तो चाहती हूं कि तुम उसके कान खींचो। अपराध करे तो, बड़ी से बड़ी सजा दो। लेकिन, कुछ तो करो जिससे अनुभव करे कि वह तुम्हारा है...तुम्हारा बेटा है। अठारह-उन्नीस वर्ष का होने को आया, लेकिन, आज तक न तो तुमने राम को कभी प्यार के शब्द कहे, न फटकार के।" राजदेव चुपचाप सुनते रहे। उनके पास कोई उत्तर था भी नहीं।

राजदेव रात भर बैठे-बैठे विभिन्न भाव-धाराओं में थपेड़े खाते रहे। रात बीत गई थी। राजदेव के क्रोध का सागर अभी भी उद्वेलित था। उन्होंने ललिता के सामने अपने आप पर नियंत्रण रखा। ललिता को दवा दी, उसे स्नान-घर तक सहारा देकर पहुंचाया। बाद में वे स्वयं कार्यालय जाने की तैयारी में लग गए। लेकिन, अभी दुष्कांड का अध्याय पूरा नहीं हुआ था।

राजदेव कार्यालय जाने के लिए बाहर निकले ही थे कि राम आ पहुंचा। अपने पिता को देखकर उसके पांव रुक गए। वह विचित्र स्थिति में पड़ गया था। न तो वह आगे बढ़ सकता था और न ही पीछे भागने की मनःस्थिति में था। राम को देखते ही राजदेव की आंखों के आगे पिछली रात की घटनाएं हाहाकार कर उठीं। अचानक ही न जाने उन्हें क्या हो गया कि वे आपे से बाहर हो गए। उन्होंने लपककर राम को पकड़ लिया और एक ही झटके में उसे जमीन पर गिरा दिया। इसके बाद राजदेव के सिर पर खून सवार हो चुका था। वे होश खो बैठे। राम लात-घूंसों की बौछार से अपने आपको बचाता हुआ जमीन पर लुढ़कता रहा। जब राजदेव का हाथ थक गया, तब वे बाहरी गेट के पास गड़ी लम्बी लाठी उखाड़ लाए और उसे राम की देह पर बरसाना शुरू कर दिया। वे विवेकशून्य हो गए थे। उन्हें यह भी नहीं मालूम हो सका कि वे कब तक अपने बड़े बेटे को पीटते रहे। उन्हें यह भी देखने का होश नहीं रहा कि मार खाते-खाते राम मर गया या जिन्दा है।

हो गया होता, यदि चीख-पुकार सुनकर निशा राम की देह पर आकर गिर नहीं गई होती।

निशा को भी लाठी का प्रहार झेलना पड़ा। लेकिन, तब तक राजदेव होश में आ चुके थे। उन्होंने देखा कि निशा राम को उसी प्रकार ढंककर पड़ी है, जैसे कोई चिड़िया पंख फैलाकर अपने बच्चे को ढक लेती है। फिर वे देख पाए कि राम के मुह से और सिर से खून की धारा बह रही है। चार कदम दूर दरवाज़े का सहारा लिए हुए ललिता मूक खड़ी अपने बेटे की दुर्दशा देख रही थी। राजदेव ने देखा कि उसकी आंखों में कोई भाव नहीं है। वहां भयंकर रिक्तता है। उस चेहरे पर कोई संवेदना भी नहीं है, और तब वे चुपचाप गराज की ओर चले गए।

पांच

…राजदेव के मुंह से कराह निकल गई। घुटनों की चोट का दर्द धीरे-धीरे तीव्र से तीव्रतम होता जा रहा था। तिनके की तलाश में राजदेव की आंखें दूर-पास, ऊपर-नीचे, चारों ओर भटकने लगीं। सूर्योदय हो रहा था। किरणों का प्रकाश साल, ओक, पाइन आदि के घने पेड़-पौधों के सघनतम जाल को पार करता हुआ धरती पर खामोशी से उतर चुका था। राजदेव की आंखें भटकती हुई बायीं ओर के वीभत्स दृश्य पर स्थिर हो गईं। वहां एक मनुष्य के शरीर का बीच का हिस्सा झुलसकर बैंगन की तरह पड़ा हुआ था। उस मनुष्य के सिर और घुटनो के नीचे का हिस्सा गायब था। देह के ऊपर के वस्त्र जल गये थे। उस जले हुए लोथ के पास ही हवाई जहाज के पंख का जला हुआ टुकड़ा पड़ा था। राजदेव से वह दृश्य देखा नहीं गया। न जाने उनमें कहां से बला की ताकत आ गई कि वे अचानक ही उठ बैठे। असह्य पीड़ा बर्दाश्त करते हुए भी अपनी देह पर का कोट उतारकर उस लोथ पर फेंक दिया। अजीब संयोग कि वह कोट लोथ के ऊपर ही जा गिरा। यह काम पूरा होते ही राजदेव को लगा, जैसे उनके सिर के ऊपर किसी ने पानी की बौछार कर दी हो। वे पसीने से लथपथ हो गये। उनका सिर चक्कर खाने लगा। उन्होंने सिर पकड़ लिया। तब मालूम हुआ कि उनका शरीर बर्फ की तरह शीतल हो गया है। वे आंखें बन्द करके फिर लेट गये।

दर्द और चक्कर में कमी आने पर राजदेव ने फिर चारों ओर नज़र दौड़ाई। कहीं कोई नहीं था। केवल हरे-भरे बड़े-बड़े साल और पीपल के पेड़ आसमान को मापने का प्रयास करते हुए-से चुपचाप खड़े थे। चारों ओर ऊंची-ऊंची जंगली घास, झाड़-झंखाड, लता-द्रुम उगे हुए थे। हवाई जहाज के टूटे, जले हुए टुकड़े, दूर-दूर तक फैले हुए थे—कुछ पेड़ों के सहारे लटके हुए थे। बीच-बीच में लाशों और लाशों के टुकड़े छितराये हुए थे। दूर पर हाथी के चिंघाड़ने की आवाज सुनाई पड़ी। राजदेव के मन में कई आशंकाएं उठ खड़ी हुईं।

"अब क्या होगा? क्या यहीं भूखा-प्यासा, अनदेखा-अनजाना सिसक-सिसक कर मर जाना होगा?" राजदेव के मन में तरह-तरह के प्रश्न…

उत्तर एक ही था—"अकाल मृत्यु !" वही अकाल मृत्यु, जिसने अन्य यात्रियों को निगल लिया। वे नव-दम्पति कितने खुशनसीब थे ! वे सब कहां गये ?… मैं कहा हू ? सब साथ चले थे। सबको कोई न कोई मंज़िल मिल ही गयी। मैं बीच में ही रह गया—मंज़िल की भयंकरता का अर्थ भोगने के लिए !…लेकिन, वह तो जीवन भर भोगता रहा हूं। इससे मुक्ति कहां मिली ! जीवन जीने की गलतफहमी में कदम-कदम पर 'स्व' का विसर्जन, आत्मा का हनन, सिद्धान्तों और आदर्शों का त्याग 'समझौता' यही तो सबको करना पड़ता है ! 'मन को भुलावा देने के लिए कह दिया जाता है कि सत्य कुछ भी हो सकता है, वही नहीं जो दृश्य है, वह भी जो दृश्य से परे है। 'अभी का सत्य क्या मृत्यु नहीं है ? इससे पहले क्या था ? हम कहा से चले' कहा जा रहे थे ?…हां, कलकत्ते से वायुयान उड़ा था। लगभग डेढ़-दो घण्टे बाद ही यह दुर्घटना हो गई। कितना अच्छा होता कि सभी यात्रियों के साथ मैं भी मौत का ग्रास बन गया होता। इस जीवन से क्या लाभ ? —राजदेव ने अपने घुटने को देखा। खून बहना बन्द हो चुका था। घुटनों के चारों ओर खून जमकर काला हो गया था। वहां की ज़मीन देखकर ही राजदेव समझ गये कि काफी ज्यादा खून निकल चुका है। लेकिन, अचानक ही उन्हे इस बात से बडा बल मिला कि वे उठकर बैठ सके थे, अभी इतनी ताकत उनमे है। वे समझते थे कि यह उनकी अन्दरूनी ताकत है, और जब तक यह ताकत मनुष्य मे रहती है, वह मृत्यु से जूझ सकता है। मृत्यु से जूझते रहने का नाम ही ज़िन्दगी है। यदि वे हिम्मत करें तो जीवन रक्षा का रास्ता ढूढ़ सकते है। लेकिन, जाए तो कहा जाएं !

राजदेव एक पहाडी की ढलान पर पड़े हुए थे। नीचे कुछ ही दूर पर समतल ज़मीन नज़र आ रही थी। क्या यह सम्भव था कि एक पाव के सहारे वे समतल ज़मीन तक घिसटते हुए पहुंच सकें। वे जानते थे कि थोड़ा भी संतुलन बिगड़ने पर लेने के देने पड़ जाएगे। प्यास के मारे उनका कंठ और होंठ सूख रहे थे। धीरे-धीरे प्यास बढ़ती ही जा रही थी। राजदेव ने मन को मजबूत किया और दोनों हथेलियो के सहारे थोड़ा उठकर वे कुछ देर बैठे रहे। उसी समय पीछे की झाडी मे कुछ खड़खड़ाहट हुई। राजदेव को लगा, जैसे पीछे से कुछ चला आ रहा है' थोड़ी देर के लिए उनके होश उड़ गये। निश्चय ही वे बर्मा के सीमावर्ती जंगलों में जा पड़े हैं, जहां बड़े-बड़े भयंकर सर्प होते हैं। उन्होने समझ लिया कि जीवन की क्षणभंगुरता सार्थक होने जा रही है।

पीछे देखने तक की उनमें हिम्मत नहीं हुई। वे मौत की प्रतीक्षा में आंखें बन्द किये बैठे रहे। पल के शतांश मे पूरा जीवनवृत्त खड-खंड होकर बड़ी ही अकल्पनीय तीव्रता से मन के पर्दे पर उभर आया। राम के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन ला देने वाली घटना को याद कर, न जाने क्यों, राजदेव विषाद से भर उठे। किस निर्ममता के साथ उन्होंने उस दिन राम को पीटा था! यदि वह मर जाता तो ?...

उस दिन शाम को राजदेव यथासमय घर नहीं पहुचे तो ललिता अत्यधिक चिन्तित हो उठी थी। ऐसा कभी नही हुआ था। वह भी तब, जबकि ललिता बीमार थी। देर होने पर ललिता ने प्रेस मे फोन किया। मालूम हुआ कि उस दिन राजदेव प्रेस में गये ही नहीं। यह सुनते ही ललिता टूट-सी गई। उसने राम से जाकर कहा—

"तुम्हारे पिता के जीवन-क्रम में यह कैसा व्यतिक्रम आ गया राम! न जाने वे कहां चले गये! अच्छा ही हुआ। अब तुम बिल्कुल स्वतंत्र हो। मैं कल सुबह तक इन्तजार करूंगी। यदि वे फिर भी नही आये तो मैं इसी रुग्णावस्था में यह घर छोड़कर कही चली जाऊगी। फिर तुम पर निर्भर करेगा कि अपने तीन छोटे भाई-बहनो को पालो या उन्हे जहर देकर मार डालो।" इसके आगे ललिता बोल नहीं सकी। वह रोती हुई तेज़ी के साथ राम के पास से चली गई।

उस दिन राम घर से बाहर नही जा सका था। उसके शरीर पर कई जगह काले धब्बे पड गये थे और कई स्थलों से खून निकल आया था। उसके अंग-प्रत्यंग मे असह्य पीड़ा थी। वह कराहता रहा, लेकिन ललिता उसे देखने नही आयी। निशा अपनी व्यथा को भुलाकर दिन-भर राम की सेवा मे जुटी रही। राम ने न तो निशा को ऐसा करने से रोका और न ही वह निशा से कुछ बोल ही सका। बस, चुपचाप बिस्तर पर पड़ा रहा। भीतर ही भीतर रोता रहा। उसके अन्तस् से निकले हुए आंसू धीरे-धीरे उसके कलुषित धब्बों को धोते रहे। वह ग्लानि से गलता रहा और उसके भीतर स्फूर्ति और आत्म-विश्वास जागृत होता रहा। मा की बात ने उसमे संकल्प और साहस का संचार कर दिया। राम उठ खड़ा हुआ। तब तक उसकी मां अपने कमरे में जा चुकी थी। वह स्थिरचित्त से मा के पास पहुंचा। ललिता बिस्तर पर औंधी पड़ी फफक-फफक कर रो रही थी। राम ने अवरुद्ध स्वर मे कहा, "मैं बाबूजी को ढूंढ़कर ले आता हूं मां! मैं उन्हे लेकर ही लौटूगा। मुझ पर विश्वास

करो। मैं तुमसे क्षमा भी नही मांगगा। उसका कोई अर्थ भी नहीं होगा। एक दिन तुम स्वयं ही क्षमा करोगी।" और राम ने अपने वचन का निर्वाह किया।

घण्टों तक राम उन तमाम जगहों पर भटकता रहा, जहां-जहां उसके पिता के मिल सकने की सम्भावना थी। लेकिन, राजदेव वहां मिले जहां राम ने कल्पना तक नही की थी। हुआ यह कि जब अपने पिता के सभी परिचितो के यहा से वह निराश लौट आया,तब उसने विजय चौक से लेकर नेशनल स्टेडियम तक के पूरे मैदान को छान मारा। राजदेव को न पाकर राम निराश हो गया। वह पिता को लिये बगैर घर नहीं लौट सकता था। उसके मन में आया, क्यो न वह अपनी ही जीवनलीला को समाप्त कर दे। मां ने ठीक ही तो कहा, उसी के कारण यह सब हुआ। कितना बड़ा पापी है वह। ' लेकिन, तभी उसके मन के किसी कोने मे प्रतिशोध की भावना जाग उठी ' बेशक, अपने तमाम कुकर्मों के लिए मैं स्वयं जिम्मेवार हू। मेरे जीवन मे रोग लग गया है—ऐसा रोग जो कैंसर की तरह मेरे विवेक, मेरी मर्यादा, मेरी मानवीयता और मेरी सद्वृत्तियों को खा चुका है। किन्तु, इस रोग के लिए जितना जिम्मेवार मैं हू उतना ही जिम्मेवार लालनारायण है। लालनारायण उम्र और तजुर्बे में बडा होते हुए भी मुझे पतन की राह पर ढकेलकर बढाता रहा। उसी ने मुझे सिगरेट और शराब पीना सिखाया। उसकी संगत मे पहली बार एक अनजान लड़की के कामोद्दीप्त शरीर का भोग किया। जब मैंने शुरू-शुरू में विरोध किया, आनाकानी की और अपने शील-संकोच को प्रकट किया तब उसने बड़े-बड़े लोगों, समाजसुधारकों और साहित्यकारों का नाम ले-लेकर यह सिद्ध किया कि इस भूख से कोई भी बचा हुआ नही है।—यह सब सोच-कर राम के कदम लालनारायण के घर की ओर तेजी से मुड़ गये। उसने मन ही मन तय कर लिया कि अपने को खत्म करने से पहले वह लालनारायण की जीवनलीला को समाप्त कर देगा। लालनारायण ऐसे रोग का बीज है, जो कई राम विनष्ट कर देगा।

राम लालनारायण के ड्राइंग रूम में दाखिल होते ही खड़ा का खड़ा रह गया। उसे काटो तो खून नही। वह अवाक् देखता ही रह गया। जिन विचारों मे उफनता-उबलता वह उन्मादग्रस्त हो रहा था, ठीक उसके विपरीत स्थिति देखकर जैसे वह धम्म से जमीन पर जा गिरा। ड्राइंगरूम मे सोफे पर उसके पिता बैठे कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। उसके पिता के अतिरिक्त वहा कोई नहीं

पिता के पांव पकड़ लिए। पल भर में ही राजदेव सहज हो उठे। उन्होंने अपने बेटे को बड़े प्यार से उठाया और सोफे पर बैठा लिया। राम का कलुष तो निशा के सात्विक प्यार से ही घुल चुका था। पाप तभी तक पाप है जब तक कि उसे महसूस नहीं किया जाय। महसूस करते ही शुचिता आ जाती है। राम अब निर्भय हो चुका था। बहुत ही सामान्य और सहज भाव से उसने अपने पापपूर्ण जीवन की पूरी कहानी अपने पिता को सुना दी। उसी दिन उन्हें पारो के अचानक गायब हो जाने का रहस्य मालूम हुआ।

कहानी तब शुरू हुई थी जब राजदेव एक छोटे-से अखबार में उप-सम्पादक थे। आय अत्यधिक सीमित थी। राम के जन्म लेते ही ललिता बीमार रहने लगी, कभी पेट-दर्द तो कभी खून की कमी, कभी पीलिया तो कभी अतिसार। रिश्तेदारों की स्वार्थपरता का नग्न रूप भी तभी देखने को मिला। राजदेव की कठिनाई यह थी कि तनख्वाह से महीने भर का भोजन-भात भी संतुलित ढंग से नहीं चल पाता था। ऊपर से बीमारी का अटूट सिल-सिला। राजदेव को कर्ज का सहारा लेना पड़ा। जब सभी दोस्त चुक गये तब चपरासी और सूदखोर महाजन के यहां से कई बार कागज लिखकर उन्हें कर्ज लेना पड़ा। इस तरह राजदेव ने ललिता का शारीरिक इलाज तो करवा दिया, लेकिन उनका पारिवारिक जीवन शिकवा-शिकायत, आरोप-प्रत्यारोप-खीझ और दुराव-तनाव के रोग से ग्रस्त रहने लगा। इसी वातावरण में राम का लालन-पालन हुआ। राजदेव के हृदय का वात्सल्य हृदय में ही दबा रह गया। परिस्थिति की गम्भीरता राजदेव के चेहरे पर मुखौटा बनकर चढ़ गई। पति-पत्नी के बीच अधिकतर दुराव-छुपाव का पर्दा उठता-गिरता रहा।

समय की तरह उम्र भी किसी के लिए नहीं रुकती। राम को जब होश आया तब उसने पड़ोस के परिवारों को देखा। उसके मन के कोने में यह बात घर कर गई कि वह पिता की नजरों में उपेक्षित है। उम्र से अधिक यह भाव दिन-प्रतिदिन परवान चढ़ने लगा। स्नेह की जगह शंका ने ले ली। विश्वास की जगह अविश्वास फैलने लगा। प्यार का स्थान दुराव ने लिया। स्कूल में भी वह समूह के बीच अकेलापन महसूस करता रहा। पढ़ाई-लिखाई में जिस लड़के की प्रशंसा होती वह लड़का राम की नजरों में ईर्ष्या-द्वेष का ही नहीं, नफरत का भी पात्र बन जाता। पड़ोस के जिस किसी लड़के को वह पिता का प्यार पाते देखता, उस लड़के के प्रति राम सुलग-सुलग उठता था। राम अधिकतर उन लड़कों के साथ समय व्यतीत करता था जो उपेक्षित, उच्छृंखल

और स्वच्छंद स्वभाव के थे। जवानी की देहरी पर पांव रखते ही ऐसा संयोग हुआ कि उसकी संगत लालनारायण से हो गई।

लालनारायण दो साल तक मुज़फ्फरपुर रहकर पढने का बहाना करता रहा था। उन दिनों मुज़फ्फरपुर का वातावरण अच्छा नही था। वहां लड़के दल बनाकर रहते थे। पढ़ाई-लिखाई से उनका कोई वास्ता नहीं रहता था। कभी किसी प्रोफेसर को पीट दिया तो कभी कोई दुकान लूट ली। मुज़फ्फरपुर के छात्रों ने लाल तौलिया दल, पीला रूमाल दल के नाम से अपने-अपने गैंग बना लिए थे। रोज़ ही छुरेबाज़ी होती रहती थी। लालनारायण इस तरह के कार्यक्रम में खुलकर हिस्सा लेने लगा था। पुष्कर ने जीवन भर जिस पैसे को दांत से पकड़ा था उसे लालनारायण चतुर्भुज स्थान के कोठों पर मुजरा सुनने, सिनेमा देखने और होटलबाज़ी में फूंकने लगा था। पुष्कर को यह बात मालूम हो गई थी, इसलिए उन्होंने लालनारायण को राजदेव के साथ कर दिया।

लालनारायण लगभग दो साल तक अपने चाचा राजदेव के साथ ही रह गया। कहां मुज़फ्फरपुर की ऊबड़-खाबड़ सड़कें, खुली हुई बदबूदार नालियां, दुःखी, दरिद्र, रोगग्रस्त जनसंख्या से भरे-पड़े बेतरतीब अनगिनत गन्दे मकानों के बीच से गुजरती हुई कीचड़ भरी गलियां, मच्छरों से भनभनाती हुई रात और मक्खियों से भरे हुए दिन, और कहां नई दिल्ली की साफ-सुथरी चौड़ी सड़कों के किनारे तरतीब से खडी खूबसूरत अट्टालिकाएं, सजी हुई दुकानें, जनपथ पर शाम की रंगीनी, कनाट प्लेस की चहल-पहल और चारों ओर फूल ही फूल, तितलियां ही तितलियां। लालनारायण मुक्त होकर दौड़ चला।

लालनारायण ने पिता को पैसे सहेजते गौर से देखा था। कालेज की स्वच्छन्दता ने उसके मन को पंख लगा दिए थे। सिनेमा, रेस्तरां और चतुर्भुज स्थान की स्वर लहरी और आनन्द वह अपने रसिक साथियों की संगत में भोग चुका था। पिता द्वारा महाजनी के धन्धे से अर्जित पैसे को खर्च करने में उसे एक अजीब तृप्ति मिलती थी। गांव आने पर वह देखता था कि किस प्रकार उसका पिता खेतिहर मजदूरों, गांव के टुटपूंजियों, व्यवसायियों और जरूरतमन्द किसानो से सौ-सौ रुपये के हज़ार-हज़ार रुपये वसूल लेने पर भी मूल को ज्यों का त्यों बरकरार रखता था। अधिकतर मूल तो पुश्त-दर-पुश्त बरकरार रहता था। पिता द्वारा अर्जित इस प्रकार के धन का सदुपयोग करने की कल्पनामात्र से ही लालनारायण प्रसन्नचित हो उठता था।

दिल्ली आने पर उसे खुल-खेलने का मौका मिला। राम को अकेलापन खाए जा रहा था। वह कुछ कहना और करना चाहता था कि उसे लालनारायण के रूप में अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम मिल गया।…

राजदेव आंखें बन्द किए-किए ही अपने बीते हुए जीवन की भावपूर्ण घटनाएं घटित होते देखते रहे।' 'पीछे वाली आहट बिल्कुल पास सामने आकर बन्द हो गई। राजदेव इस प्रतीक्षा मे आंखें बन्द किए रहे कि मौत अब झपट्टा मारनेवाली ही है। लेकिन, मौत आगे नहीं बढ़ी। तभी राजदेव के कानों में बातचीत करने की भनक सुनाई पड़ी। उन्होंने आखें खोलकर देखा, चार कदम की दूरी पर एक व्यक्ति घूरता हुआ खड़ा था और छह-सात आदमी उससे भी आठ-दस कदम दूर खड़े आपस में कुछ बातें कर रहे थे। सामने खड़े व्यक्ति को राजदेव ने गौर से देखा। लम्बा हट्टा-कट्टा गौरवर्ण शरीर, खड़ी नाक, आंखें कुछ छोटी, दोनों कंधों से नीचे वक्षस्थल पर दो चौड़ी पट्टियां—क्रॉस की तरह बंधी हुई, सिर पर अजीब ढंग की टोपी जिसमें पक्षियों के पर खुसे हुए थे, नीचे पैंजामा की तरह रंगीन तहमत, हाथ मे भाला। राजदेव देखते ही समझ गए कि सामने खड़ा व्यक्ति नागा है। नागाओं के बारे में वे राम से बहुत कुछ सुन चुके थे। उनके सम्बन्ध मे कई पुस्तकें भी पढ़ चुके थे। उन्हें मालूम था कि नागा लोग जंगलो के लड़ाकू शूरवीर आदिवासी होने के बावजूद अकारण ही किसी को कष्ट नही पहुंचाते। यह सोचकर राजदेव किंचित आश्वस्त हो गए। नागाओं को देखकर राजदेव की प्यास तेज़ हो गई। उनका कंठ और होंठ और अधिक सूखने लगे। शायद प्यास बुझाने या सम्बन्ध स्थापित करने के विचार से राजदेव ने हाथ की अंजुली बनाकर अपने होठों से सटाते हुए सकेत से ही पानी पिलाने की याचना की। सामने खड़ा व्यक्ति तुरन्त राजदेव का आशय समझ गया। उसने दूर खड़े नागाओं से अपनी भाषा में कुछ कहा। राजदेव एक-दो शब्द पकड़ पाया 'ज़खू' और 'ओकू।' बाद मे उसे अर्थ मालूम हुआ कि 'ज़खू' नदी को कहते और 'ओकू' जल-पात्र को। तुरन्त ही एक नागा दौड़ता हुआ ढलान के नीचे उतरकर आंखों से ओझल हो गया और चन्द मिनटों मे ही एक बांस के पात्र में पानी भरकर ले आया। पानी पीते ही राजदेव की चेतना पूरी तरह लौट आई। वे चुपचाप नागाओं को देखते रहे। सभी नागा दो-तीन मिनट तक आपस में कुछ बातचीत करते रहे, फिर अचानक चार-पांच नागाओं ने मिलकर राजदेव को उठा लिया। राजदेव ने अपने आपको भाग्य के भरोसे छोड़ दिया। अब इतना तो निश्चिन्त

हो ही गए थे कि मरेंगे भी तो मनुष्यों के बीच मरेंगे। ललिता को सूचना मिल जाएगी। ललिता को दुख तो होगा, लेकिन संसार का काम किसी के अभाव मे कभी रुकता नही है। फिर, अब तो राम भी रास्ते पर आ गया है।...

लालनारायण को उसके पिता पुष्कर ने यह सोचकर दिल्ली भेजा था कि *अच्छे वातावरण में लड़का पढ़-लिखकर सुसंस्कृत बनेगा। घर-खानदान का* नाम रोशन करेगा। 'पैसा ही सब कुछ नही होता,' यह ज्ञान, बादलों से भरे अंधेरे आसमान में बिजली की कौंध की तरह, पुष्कर को भी कभी-कभी चौंका देता था, खासकर लालनारायण के सन्दर्भ मे। पुष्कर छोटे से पद पर रहकर, नियमित और अनियमित ढंग से, जीवन-पर्यन्त पैसा जोड़ते रहे थे। उनके विचार मे धर्म, मोक्ष के साथ-साथ अर्थ और काम के क्षेत्र मे उपलब्धियों का भी महत्त्व है। वे कहा करते थे कि मनुष्य के किए कुछ नही होता है। वह तो नियति और प्रारब्ध का दास है। सब कुछ पूर्व निश्चित है। प्रभु की प्रेरणा के अनुसार ही मनुष्य व्यवहार करता है। इसलिए, यह भी पूर्व निश्चित है कि ज़रूरतमन्दों को सूद पर पैसा देना उनके प्रारब्ध में है। जो कर्ज लेता है, वह अपने पूर्व जन्म के कर्म-कुकर्म का फल भोगने के लिए ही कर्ज का बोझ वहन करने का भागी बनता है। पुत्रशोक, आर्थिक कष्ट, मानसिक प्रताड़ना और नारकीय जीवन की यातना के बीच से गुज़रना, या नही गुज़रना मनुष्य के हाथ मे नहीं है। मनुष्य के हाथ में मात्र स्वीकृति है। जो कुछ है उसे स्वीकार करो और जो नही है उसको अस्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जिसके पास सब कुछ है, उसके प्रति अनास्था अथवा विरोध की भावना रखना ईश्वर की सृष्टि और परम सत्ता के प्रति अनास्था प्रकट करना है।

दाह-संस्कार के लिए भी यदि कोई गरीब कर्ज़ लेने आता था तो पुष्कर सूद की दर मे कोई कमी नहीं करते थे। सूद की दर मे कमी करना उनके विचार में ईश्वर के प्रति अपराध था, क्योंकि जो कर्ज़ लेने आया है उसे तो ईश्वर पाप का फल दे रहा है। यदि शादी-विवाह के लिए उससे कोई मदद की याचना करता तो पुष्कर को किसी परम्परा अथवा समाज के दायित्व का बोध नहीं होता। बल्कि वे यही समझते थे कि कर्ज़ मांगनेवाला अपने प्रारब्ध को भोगकर अपना जीवन सार्थक कर रहा है। उन्हें अपने प्रारब्ध पर भी पूरा विश्वास था। वे अपने आपको भाग्यशाली मानते थे। उनकी धारणा थी कि पूर्व जन्म में उन्होंने बहुत सारे पुण्य किए थे, जिसका सुफल उन्हे इस जन्म में सुख-समृद्धि के रूप मे प्राप्त हो रहा है।

जब लालनारायण मुजफ्फरपुर में रहकर पढ़ने लगा तब पुष्कर को लगा कि उनकी श्री-समृद्धि में उनका पुत्र समय आने पर चार-चांद लगाएगा। किन्तु, कुछ ही दिनो के बाद लालनारायण की आवश्यकताएं बढने लगीं। कभी पुस्तकों के नाम पर, तो कभी कालेज के शुल्क के नाम पर, कभी बिल्डिंग फण्ड के लिए, तो कभी अध्ययन-यात्रा के लिए हर महीने १००-१५० रुपये अतिरिक्त की मांग पुष्कर के पास आने लगी। पुष्कर अपने समय के मिडिल पास थे। कालेज तो दूर, हाई स्कूल का मुह भी नहीं देखा था। इसलिए वे चुपचाप अपने बेटे की सारी मांग पूरी करते रहे। लेकिन, मन के किसी कोने में उनका प्रारब्ध उन्हे सालने लगा। धीरे-धीरे उनके कान में लालनारायण की गति-विधियों की भनक भी पड़ने लगी। यही कारण था कि उन्होने अपने बेटे को राजदेव के हवाले कर दिया।

लालनारायण को पढ़ाई-लिखाई के बारे में कोई भ्रम नहीं था। उसके दिमाग में एक बात स्पष्ट थी कि मनुष्य को धन-सम्पदा इसीलिए चाहिए ताकि वह उसका भोग करते हुए जिन्दगी जी सके। वह अपने पिता के सूखे, संकुचित, संग्रही जीवन से नफरत करता था। वह हर वस्तु को उसकी उपयोगिता की दृष्टि से आंकता था। उसकी मान्यता थी कि सुख-दु:ख शरीर भोगता है। इसलिए हर संभव प्रयत्न करके शरीर को रस, रंग के सुख से सराबोर कर देना चाहिए।

दिल्ली आने पर वह बहुत खुश था, क्योंकि यहां का वातावरण उन्मुक्त था। यहां वह सब कुछ था, जिन्हे वह शारीरिक भोग के लिए आवश्यक मानता था। भोग और इच्छाओं की तृप्ति के लिए बस धन चाहिए। यहां उसकी भी कमी नही थी। धन-सम्पदा अर्जित करने की विभिन्न राहे थीं और अर्जित सम्पदा का उपभोग करने पर कोई नियंत्रण नही था। दिल्ली पहुचते ही लालनारायण ने देख लिया कि सरकारी दफ्तरों और व्यापारिक संस्थानों मे उसके चाचा राजदेव का पूरा प्रभाव है। दिल्ली में दो की खूब चलती थी, ज्योतिषी और जर्नलिस्ट की। उसने यह भी अनुमान कर लिया कि दिल्ली मे धन अर्जित करने के लिए शारीरिक श्रम की अपेक्षा नही है। यहां कई ऐसे मार्ग हैं, जिन्हें अपनाकर आवश्यकता से अधिक धन आसानी से अर्जित किया जा सकता है। इसलिए, उसने कुछ महीने बाद ही कई तरह के धन्धे शुरू कर दिए। नियुक्ति और पदोन्नति से लेकर परमिट और लाइसेन्स तक दिलाने की दलाली में वह सिद्धि-पर-सिद्धि प्राप्त करने लगा। दो साल के भीतर ही लालनारायण की

स्थिति सुदृढ हो गई। राजदेव को यह ढंग पसन्द नही आया। दिल्ली में रह कर भी वे दिल्ली की हवा से अछूते थे। दायित्व और कर्तव्य को उन्होने धर्म की तरह धारण कर रखा था। उन्होने जब देखा कि लालनारायण उन तमाम मूल्यों के विरुद्ध काम कर रहा है, जिन मूल्यों के लिए वे जीना चाहते थे, तब उन्होने उससे साफ-साफ कह दिया कि वह अपने रहने के लिए अलग व्यवस्था करे और उनका नाम बेचने का दुस्साहस न करे।

लालनारायण वहां से हटना भी चाहता था। उसे अब सहारे की जरूरत नही थी। वह अलग रहने लगा और धन के साथ-साथ अपना प्रभाव बढाने के लिए नये सिरे से उद्यम करने लगा।

उसकी बुद्धि प्रखर थी। उसने देख लिया कि अधिक दिनों तक वह अपने चाचा राजदेव की नाव में सवार नही रह सकता। राजदेव की नाव तो पार लगाने के लिए थी। लेकिन, वह तो पार जाकर विश्राम करने की इच्छा नही रखता था। उसकी इच्छा थी कि वह नदी की बीच धारा में रहकर कभी प्रवाह के अनुकूल तो कभी प्रतिकूल दौड़ लगाए। उसकी इच्छा थी कि उसकी नाव सुख-समृद्धि की नदी में दिन-रात चलती रहे'''नदी के अन्त तक जाकर भी न रुके। समुद्र की छाती को चीरता हुआ वह विचरण करे। लालनारायण को सफलता पर सफलता मिलती रही। सुरा-सुन्दरी और कंचन-कामिनी के सहारे वह बड़े-बड़े महारथियों, सत्ताधारियों, मनीषियों की दुर्बलताओं का स्वामी बन गया।

उस दिन राम इतना अभिभूत हो उठा था कि उसने अपने जीवन की सभी घटनाएं पिता को बता दी। निःसंकोच भाव से वह सब कुछ भी कह दिया जो एक पुत्र को पिता से नही कहना चाहिए था। एक दिन वह लालनारायण के घर पहुचा तो लालनारायण कही जाने की तैयारी में था। राम को देखते ही वह प्रफुल्लित हो उठा। लालनारायण से राम तब तक बहुत खुल चुका था। एक साथ बैठकर कई बार शराब भी पी चुका था। सिगरेट का शौक अभी उसे लगा ही था। कुल मिलाकर राम को लालनारायण की संगत में रस मिलने लगा था। लालनारायण ने राम को देखते ही कहा, "तुम ठीक समय पर आये। मेरे साथ चलो। बहुत ही मज़ेदार चीज दिखाता हू।"—यह कहकर लालनारायण ने राम को अपने साथ कार मे बैठा लिया। कार जनपथ के एक मशहूर सुसज्जित होटल के पोर्च में जाकर ही रुकी। राम मुख्य सड़क से गुजरते समय कई बार उस होटल की आलीशान इमारत को ललचाई नज़रों

से देख चुका था। लेकिन, उसके भीतर जाने का उसे कभी अवसर नहीं मिला था। जब वह पोर्च से उतरकर भीतर दाखिल हुआ तो वहां की साज-सज्जा देखकर दंग रह गया। रास्ते पर भी दीवार से दीवार तक बहुत ही अच्छी और मोटी कालीन बिछी हुई थी। दरवाज़े पर पहुंचते ही शानदार पोशाक में सुसज्जित दरवान ने सलामी दी थी। भीतर इन्द्रपुरी जैसा दृश्य उसे देखने को मिला। लालनारायण के साथ लिफ्ट के सहारे तीसरी मंज़िल पर वह जा पहुंचा। गलियारे से होता हुआ लालनारायण एक कमरे के पास पहुंचा तो बैरे ने उसे सलाम किया और दरवाज़ा खोल दिया।

राम के मन में होटल के भीतर की साज-सज्जा और प्रभावशाली वातावरण देखकर जो हार्दिक प्रसन्नता हुई थी वह कमरे के भीतर का दृश्य देखते ही घबराहट मे बदल गई। कमरे के भीतर अठारह-उन्नीस साल की एक बहुत ही खूबसूरत लड़की बैठी हुई थी। उसके सामने की छोटी मेज पर दो गिलास, बर्फ से भरा हुआ जग, शराब की बोतल और तीन-चार क्वाटर प्लेट रखी हुई थी, जिनके पास ही चांदी का बन्द डोंगा रखा हुआ था। लालनारायण को देखते ही लड़की ने अजीब अन्दाज़ से मुस्कराकर अपना बायां हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया। लालनारायण ने आगे बढ़कर उसके हाथ को चूम लिया। राम के भाल पर पसीने आ गए। लालनारायण ने तपाक से राम का परिचय कराते हुए कहा, "यह मेरा जिगरी दोस्त है।" लड़की ने गौर से राम को देखा और फिर लालनारायण को। फिर वह उठकर राम के पास चली आई। राम की घबराहट और बढ़ गई। कदाचित् लड़की राम के मन के भाव को पढ़ चुकी थी। उसने आहिस्ता से राम की बांह मे अपनी बांह डाल दी और उसे जबरन धकेलती हुई सोफे पर ले आई। लालनारायण ने राम से कहा, "यह मेरी गर्ल फ्रेन्ड रानी है। कालेज मे पढ़ती है। बहुत अच्छी शायर भी है।"

राम ने नमस्ते करना चाहा कि लड़की ने लपककर हाथ मिला लिया और उसके कन्धे पर फिर अपनी वल्लरी सरीखी बांह डाल दी। इस बीच राम शायद मूर्च्छित ही हो जाता, तभी रानी ने पूछा, "ह्विस्की चलेगी?" राम ने सिर हिलाकर हामी भर दी। वह बुरी तरह घबरा उठा था। वह चाहता था कि रानी किसी दूसरे काम में लग जाय, ताकि उसके स्पर्श से मुक्त होकर वह आश्वस्त हो सके। पांच-छह मिनटों के भीतर ही राम कई स्थितियों से गुज़र चुका था। वह पारिवारिक व्यक्ति होते हुए भी एकाकीपन से क्षुब्ध था। उसे लगा कि उसकी नाव उस घाट पर आ लगी है, जहां फूल ही फूल

हैं, रंगीनी ही रंगीनी है, नशा ही नशा है, संगीत ही संगीत है। वह मां का लाड़-प्यार पाता आया था, लेकिन, अब उसे लगा कि उसके प्यार की भूख यही मिट सकती है और कहीं नही। उसने दूर-पास से बहुत-सी लड़कियों को देखा था। लेकिन उसे लगा, जैसे वह रानी को देखकर ही तृप्त हो सका है। ऐसी बांह, ऐसी सुकोमल धवल गरदन, ऐसे नशीले होंठ और ऐसी उन्मादक आंखें उसने कभी नही देखी थी। राम को लगा, जैसे वह किसी घाट पर नहीं है, बल्कि ऐसे कगार पर खड़ा है जिसके नीचे उत्ताल तरंगें उठ रही हैं और आस-पास के कगार टूट-टूट कर गिर रहे हैं। जहा वह खड़ा था, वह भूखंड भी गिरनेवाला है। यदि वह कगार के साथ ही उत्ताल तरंगों का ग्रास बन गया तो क्या होगा ! उसकी मा कितनी रोयेगी-चिल्लाएगी! उसकी बहिनें क्या करेंगी ? और उसके पिता ! राम के चेहरे पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट थिरकने लगी। एक उपेक्षा, एक तिरस्कार का भाव उसकी आंखो मे झलक आया। कंठ मे कड़ुआहट भर गयी। उसने सोचा, कुछ भी ठीक नही है या सब कुछ ठीक है। सामने बढ़ा हुआ गिलास देखकर उसकी तन्द्रा टूट गई। रानी मुस्कराती हुई राम को देख रही थी। उसकी शरारत भरी मुस्कराहट राम को बहुत खूबसूरत लगी। उसने गिलास थाम लिया। तीनो ने गिलास को मुंह से लगाया। राम ने वह पूरा गिलास एक ही बार में खत्म कर दिया। रानी और लालनारायण खिल-खिलाकर हंस पड़े। पूरा पैग कंठ के नीचे जाते ही राम की घबराहट का कुहासा फटने लगा।

लालनारायण कुछ देर बाद ही रानी को उठाकर कमरे से लगे प्रसाधन कक्ष की ओर ले गया और आठ-दस मिनट बाद ही लौटता हुआ राम से बोला, "तुम रानी के साथ ऐश करो। मुझे कुछ काम है। एक-दो घंटे में लौटूंगा। रूम में ही डिनर मंगवा लेना—मेरे लिए नही।" राम कुछ कहे तब तक लालनारायण कमरे के बाहर जा चुका था।

बहरहाल, रानी ने मुस्कराकर विचित्र भंगिमा से राम को देखा। राम की समझ मे नही आया कि वह क्या करे। तभी रानी उसकी गोद मे लुढ़क गई।

राम ने अपने पिता को यह भी बता दिया कि रानी जैसी कई गर्ल फ्रेन्ड लालनारायण के पास हैं और वह छह-सात से राम को मिला चुका है। एक दिन बात ही बात मे लालनारायण ने राम से कहा था, "तुम्हारे पिता अजीब दकियानूस है। मेरे बाप की तरह ही जिन्दगी भर खटते रहे और

घिसते रहे। लेकिन, यह जानने की कोशिश नही की कि जिन्दगी किसे कहते है। हालांकि तुम्हारे पिता ने तो प्रेम का स्वाद चखा भी है, फिर भी दूसरों को ब्रह्मचर्य का लगोट पहनाते फिरते हैं। शायद तुम्हें मालूम ही होगा कि शादी के पहले ही उनका संबंध तुम्हारी मा से हो चुका था। लेकिन, इस संबंध या प्रेम को वे एक 'गिल्ट' की तरह, अपराध भाव के रूप में अपने मन मे दबाये फिरते हैं। यही कारण है कि वे सबको शका की नजर से देखते हैं। किसी पर विश्वास नही करते। सोचते हैं, नियंत्रण के अधीन ही जीवन की गति है। मेरी समझ में यह सिद्धान्त गलत है। मुझे देखो, मैं कितना खुश हूं। मुझे कोई दुख नहीं है। मैं एक मंजिल के बाद दूसरी मंजिल की ओर बढ जाता हूं। हर मंजिल मेरे सुखभोग की पूरी कहानी बन जाती है। आज मुझे किसी बात की कमी नहीं है। जब दिल्ली आया था, तुम्हारे पिता का थोड़ा सहारा लिया। यह भी उन्हें नागवार गुजरा। एक रोज़ तो उन्होने कह ही दिया 'बेटा गलत काम के लिए मेरा नाम बेचने की कोशिश मत करो।' ...यह गलत काम क्या होता है? काम काम है। हर काम सही है। कसाई, जल्लाद और फौज का सिपाही क्या काम करते हैं! उनका काम यदि गलत है तो उसे बन्द क्यो नही कर देते? फिर, न्यायाधीश भी तो मौत की सजा देने का काम करता है। तुम्हारे पिता को मेरे चरित्र पर शक रहा करता है। यह चरित्र है क्या?..."

राजदेव ने अपने बेटे से सारी बातें सुनकर भी दुख या आश्चर्य नही प्रकट किया था। वे लालनारायण के दिल्ली आगमन के साल भर के भीतर लालनारायण की हरकतो से परिचित हो गये थे। लेकिन, वे नहीं जानते थे कि लालनारायण इतनी दूर तक जा चुका है और अपने साथ राम को भी घसीट ले गया है। राम ने लालनारायण की बातों का विरोध नहीं किया, क्योंकि राम में अपने पिता के लिए अस्वीकृति थी। राजदेव ने विचार किया तो लगा—'इसके लिए मैं स्वयं जिम्मेवार था। राम मेरी रचना है। उसे सवांरने का दायित्व भी मेरा ही है। सवारने के लिए जो कौशल और एकाग्रता चाहिए उसे जुटाने मे मैं असमर्थ रहा। रोटी-दाल जुटाने में ही मैं अपने जीवन की सार्थकता मानता रहा।'...

राजदेव नागाओ के कंधो के सहारे अनजान रास्ते चले जा रहे थे। कभी नागा लोग ढलान पर उतरने लगते तो कभी चढाई शुरू हो जाती। रास्ते मे न तो वहा कोई गाव नज़र आया, न कोई सड़क। पहाड़ी रास्ते जरूर बने हुए थे, जो कहीं नजर आते तो कही अदृश्य हो जाते थे। कुछ देर पहले तक तो

राजदेव सोचते रहे कि उनकी मृत्यु निश्चित है। लेकिन अब उन्हें लगा, हो सकता है कि वे बच जाएं। वे नागाओं के कन्धों के सहारे जाते-जाते अपने अतीत के पन्नों को उलटते रहे।

नागाओं के गांव में तीन-चार नागा ऐसे मिल गये जो टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी जानते थे। उनसे बातचीत करने पर राजदेव को मालूम हुआ कि उनके घुटने की हड्डी पूरी तरह चूर-चूर हो गयी है। आस-पास मे कोई डाक्टर था नही, जो सही इलाज कर सके। तीन दिन जंगली और पहाड़ी रास्ता पार करने के बाद एक जगह थी, जहां पादरी मिशनरी डाक्टर रहते थे। उस डाक्टर को बुलाने के लिए नागा सरदार मेडोचो ने अपने आदमी दौड़ा दिये थे। तब तक जड़ी-बूटी का इलाज चलने लगा। राजदेव ने तो अपने आपको उनके हाथों में समर्पित कर दिया था। वे निश्चिन्त थे। उन्हे चिन्ता थी तो केवल ललिता की।...

ललिता ने भी न जाने कितने मानसिक तूफान झेले थे। फिर भी उसमें प्यार की, स्नेह और करुणा की कमी कभी नही हुई। वह सबको प्यार करती थी, लेकिन अपनी पांच संतानों में वह सबसे अधिक कमजोरी राम के लिए महसूस करती थी।

राम के जन्म से पूर्व, ललिता ने समाज और परिवार के हाथों कष्ट ही कष्ट उठाए थे। एक बार राजदेव काम की तलाश मे पटना गए हुए थे। ललिता गाव में थी। हालाकि परिवार संयुक्त था, इसलिए खेती-बारी से होने वाली आय मे ललिता का भी हक था, फिर भी उसे उसका हक कभी हासिल नहीं हो सका था। राम उन दिनों पेट में था। ललिता की तबीयत हमेशा खराब रहती थी। उसे जो कुछ खाने को मिलता वह रुचि पर नही चढता और जो रुचि पर चढता वह उसके लिए अप्राप्य था। उसका स्वभाव ऐसा था जो किसी के सामने इच्छा प्रकट करने या किसी चीज की याचना करने से उसे रोकता था।

एक दिन उसकी तबीयत अचानक ही बिगड़ गई। पेट मे ज़ोरों का दर्द शुरू हुआ। काफी देर तक वह अपने कमरे में बिस्तर पर पड़ी तड़पती रही। बिना बुलाये उसके कमरे में कोई आता भी नहीं था। बेकार और विद्रोही व्यक्ति की पत्नी होने के कारण उसे एकाकीपन और उपेक्षाग्रस्त जीवन यापन करना पड़ता था। जब पेट का दर्द बर्दाश्त के बाहर हो गया तब उसने चीखना-चिल्लाना शुरू किया। रात का समय था, घर के लोग अपने-अपने कमरों में बन्द थे। ललिता की चीख-पुकार किसी को सुनाई नहीं पड़ी। असह्य वेदना से

पीड़ित ललिता को लगा कि अब वह बच नहीं पायेगी। मजबूर होकर वह किसी प्रकार खाट से उतरकर गिरती-पड़ती कमरे के बाहर आई। लेकिन, कमरे के बाहर बरामदे में पहुचते ही, अंधेरे मे पड़े ओखल से टकराकर, गिर पड़ी। ज़ोरों की एक चीख उसके मुह से निकल गई।

आंगन के उस पार वाले बरामदे मे पुष्कर की पत्नी सो रही थी। वह हड़-बड़ाकर दौड़ी आई। उसने कमरे से लालटेन लाकर उसकी ज्योति तेज़ करके देखा तो लोगों को पुकारना शुरू किया। दालान पर से पुष्कर और प्रमोद भी भागे-भागे आए। गांव का एक नौजवान तीन मील दूर शहर जाकर डाक्टर को बुला लाया। इसमें भी काफी समय लग गया। डाक्टर ने जांच-पड़ताल करके बताया कि ललिता को आराम और अच्छी खुराक की जरूरत है। इन्हें इस प्रकार चलने या गिरने से बचना चाहिए। इस बार ईश्वर की कृपा से पेट का बच्चा सही-सलामत है। लेकिन, महीने भर काफी सावधानी बरतनी पड़ेगी।

दूसरे दिन से परिवार के सदस्यों का व्यवहार अधिक कठोर हो उठा। पुष्कर की पत्नी बीच-बीच में कह उठती, "बहानेबाजी करती रहती है। झूठे दर्द का बहाना करके भागती फिरती है। इस अंधेरे में निकलने की क्या जरूरत आ पड़ी थी। पेट का बच्चा नष्ट करके गांव भर में हम लोगों की बदनामी करवाना चाहती है, जिससे कि जब राजदेव आवें तो उन्हें हम लोगो को जली-कटी सुनाने का मौका मिले।"

इस तरह की बातें पुष्कर की पत्नी हर आगन्तुक महिला को सुनाने बैठ जाती। ललिता अपने कमरे मे पड़ी-पड़ी यह सब सुना करती। लेकिन बोलती कुछ नहीं। कभी-कभी गाव की कोई महिला उसके पास भी आ पहुचती और पूछती, "क्यों राजदेव बहू, तुम कोई बच्ची तो हो नही! तुम्हें तो समझना चाहिए था कि बाहर निकलने पर अंधेरे मे किसी चीज़ से टकराकर गिर सकती हो। फिर ऐसा क्यों किया?" ललिता चुपचाप सिर झुकाये ज़मीन की ओर देखती रहती। बोलने को उसके पास था ही क्या?

गांव की महिला का दूसरा प्रश्न होता, "तुम्हें इस हालत में छोड़कर राजदेव कहां चला गया है? शादी करने के समय तो उसने बाप या भाई की बात नहीं सुनी। फिर अब किस मुंह से वह तुम्हें इन लोगों के ऊपर छोड़कर खुद शहर मे मौज-मज़ा लेता फिर रहा है? तुम लोगों को सोचना चाहिए कि

घर-परिवार का भरण-पोषण करने के लिए पुष्कर बाबू और उनकी घरवाली को किस कदर अपनी माटी खराब करनी पड़ती है।"

और तब ललिता की आंखों से आसू की धारा प्रवाहित हो जाती थी। उसे अपने लिए नहीं, अपने एकनिष्ठ राजदेव के लिए रुलाई छूट जाती थी। वह जानती थी कि यदि उन्हे इस हालत का अन्दाजा मिल जाएगा, तो घर मे कलह उठ खड़ा होगा। इससे राजदेव को काम ढूढने मे बाधा पड़ेगी। इसीलिए ललिता बर्दाश्त करती रही। वह जानती थी कि उसकी दुर्दशा का अनुभव कर राजदेव को भयकर वेदना होगी, इसकी कल्पना मात्र से ललिता खामोश हो जाती थी।

राजदेव को यह सब बातें मालूम हुई, लेकिन बहुत देर से। उस घर में प्रमोद ही ऐसा व्यक्ति था जिसे राजदेव के लिए भक्ति थी और ललिता के लिए सद्भाव, समझदारी। राम के जन्म के बहुत बाद प्रमोद के मुह से वेदना प्रताड़ित ललिता की व्यथा-कथा राजदेव को सुनने को मिली थी। लेकिन, तब तक स्थिति बदल चुकी थी।

राम के जन्म के बाद ही राजदेव को काशी में काम मिल गया। एक छोटे से दैनिक अखबार में, अस्थायी तौर पर, प्रूफ रीडर के पद पर राजदेव की नियुक्ति हो गई। तनख्वाह मात्र अस्सी रुपये प्रति माह थी। फिर भी ललिता और राजदेव सन्तुष्ट थे। उन्हे परिवार की भर्त्सना और उपेक्षा से मुक्ति मिली और अपने पांव पर खड़ा होने का संतोष। इधर वही पुष्कर जो संयुक्त परिवार में रहते हुए दिन-रात अपनी आर्थिक विपन्नता का रोना रोते थकते नही थे, अपनी दो बेटियों का विवाह करने के बाद जब अलग हुए, चन्द वर्षों में ही दस बीघा जमीन खरीद ली और रहने के लिए पक्का मकान भी बनवा लिया था। गांव के लोग जान-समझ गये कि पुष्कर को कही से कोई खजाना हाथ नही लग गया है, बल्कि संयुक्त परिवार में रहकर पुष्कर ने जो कुछ अर्जित करके बचा रखा था, अब उसका उपयोग वे अपनी सम्पत्ति बढ़ाने के लिए कर रहे हैं। गांववाले चुप ही रहे। अधिकांश लोगों ने पुष्कर से कर्ज ले रखे थे। गांव मे पैसे वाले महाजनों का प्रभाव ईश्वर की तरह सर्वव्यापी होता है।

राम के जन्म के बाद ललिता को आर्थिक और शारीरिक कष्ट तो कई वर्षों तक बना रहा, लेकिन, वैसे अपमान की स्थिति से उसे शायद ही फिर कभी गुजरना पड़ा हो। जीवन-संघर्ष के दौरान मानसिक अवसाद और आपसी मनोमालिन्य की खाइयां बेशक उसे पार करनी पड़ी, किन्तु क्रियाशीलता का

अवसर मिलते रहने से उसे सात्विक सुख और संतोष भी प्राप्त होता रहा। वह अपने बेटे को शुभ शकुन मानने लगी। यही कारण था कि राम की उच्छृंखलता धीरे-धीरे स्वेच्छाचारिता और यहां तक कि दुराचारिता में बदलती गयी और लज्जिता अपने बेटे की त्रुटियों को नजरअन्दाज़ करती रही। वह सोचती रही कि राम भटककर थक जाने के बाद उसके पास अपने आप लौट आएगा। और राम सचमुच उस दिन अपने पिता के साथ उसके पास लौट आया था। जिस मर्यादाहीनता, चारित्रिक पतन और उद्दामवासना-जनित मार्ग से होकर वह भटकता हुआ बहुत दूर चला गया था, अजीब संयोग कि उसी उद्दामवासना से पराजित होकर वह घर लौट आया।

राम निशा के अपूर्व उन्मादक सौन्दर्य को देखते ही अपना आपा खो चुका था। सोते-जागते, उठते-बैठते और खाते-पीते उसकी नजर में निशा का सौन्दर्य तैरता रहता। वह इसी घात में लगा रहता था कि कब अवसर मिले और निशा के सौन्दर्य-रस का पान कर सके। लेकिन, इसी से उसे संतोष नहीं हुआ। दिन-प्रतिदिन सौन्दर्य पान की इच्छा कामाग्नि के रूप में बदलती गई। और राम ने जब देखा कि मां बीमार होकर दूर कमरे में पड़ी है और पिता कार्यालय जा चुके हैं, तब वह कामाग्नि की ज्वाला में जलकर उन्मादी की तरह बलात्कार तक की कोशिश करने की पाशविक प्रवृत्ति का प्रदर्शन कर बैठा।

राजदेव ने राम की सदा उपेक्षा की थी। राजदेव न तो राम को प्यार करते थे और न घृणा। वह देर से घर लौटता तो राजदेव उपेक्षाभरी नज़रों से उसे देख भर लेते। यदि वह कोई उत्पात करके घर लौटता और इसकी खबर राजदेव को मिलती तो वह मात्र इतना ही कहते, 'मेरे सामने से दूर हो जाओ।' अच्छा काम करने पर भी राम को पिता की ओर से कोई स्नेह या आशीर्वाद के शब्द नहीं मिलते थे। राम इन बातों से मन-ही-मन कुढता रहता। वह कुढ़न धीरे-धीरे चिढ़ और क्रोध में बदलती गई। क्रोध से प्रतिशोध पैदा हुआ। राम समझ नहीं पाया कि वह प्रतिशोध आत्मघाती था।

उस दिन राजदेव ने जब उसे पीटना शुरू किया तब वे भूल गए कि कोई जीवित व्यक्ति उनके आक्रमण का लक्ष्य है। राम को लगा, जैसे भरे हुए जीवन से वह मुक्त हो रहा हो। होश आने पर उसने देखा कि निशा उसके घावों को धो रही है। फिर उसने घावों पर दवा लगायी, पट्टी बांधी और उसीके पास बैठकर कभी सिर, तो कभी पांव दबाती रही। राम .ो .
मे शमित होते-होते समाप्त हो गयी। निशा के सामीप्य ने रा

पैदा कर दी। निशा के क्षमाभाव में उसे मनुष्यता के ऊंचे आदर्श का अर्थ मिला।

राम की आपबीती सुनकर राजदेव आश्वस्त हो गए। राम के प्रति उनके मन मे भी कहीं न कहीं हीनभावना की कोई ग्रंथि थी जो अचानक ही खुल गई। राजदेव ने सोचा कि अब उनके परिवार मे शान्ति-चैन की वंशी बजेगी। लेकिन, कुछ लोगों का जीवन ऐसा होता है कि वंशी उनके हाथ मे पड़ते ही पांचजन्य मे परिवर्तित हो जाती है।

राम को लेकर राजदेव घर लौटे। ललिता अपने कमरे में बिस्तर पर पड़ी हुई थी। निशा पांव के पास बैठी हुई ललिता के तलवे में मालिश कर रही थी। हीरामन उसी कमरे में दूसरी खाट पर बैठा हुआ था और नन्दिनी तथा निवेदिता रसोईघर मे शायद चाय बना रही थी। राम को राजदेव के साथ देखते ही ललिता उठकर बैठ गई और कुछ पल राम की ओर टकटकी बांधे देखती रही, कि न जाने क्या सोचकर उसने निशा की ओर देखा। निशा के होंठों पर क्षमादान की मुस्कराहट कौंध गई और उसने अपना सिर झुका लिया। राजदेव को देखते ही ललिता समझ गयी थी कि वे अब क्रोध मे नहीं हैं। वह यह भी समझ गई थी कि पुत्र को पिता का स्नेह मिल चुका है। ललिता इस बात से मन ही मन प्रफुल्लित हो उठी। लेकिन विषयान्तर करने के लिए उसने निशा से कहा, "जल्दी से जाकर कुछ नाश्ता बना लाओ। ऐसा करो चिउड़ा निकालकर और मटर छीलकर रखो। मैं अभी आती हूं।"

"आप बाबूजी के पास बैठिये। मैं पांच मिनट मे नाश्ता तैयार करके ले आती हूं।" यह कहकर निशा तेजी के साथ रसोईघर की ओर चली गई।

विधाता का विधान भी अजीब होता है। राजदेव अपने परिवार के साथ हंसी-खुशी नाश्ता करते हुए नन्दिनी और निवेदिता से तरह-तरह की निरर्थक किन्तु, रोचक बातें कर ही रहे थे कि दरवाजे की घंटी बज उठी। थोड़ी ही देर मे राम के साथ उमेश वहां आ खड़ा हुआ। राम जानता था कि उमेश कौन है और निशा के साथ उसका क्या सम्बन्ध है। कदाचित् इसीलिए उसकी आंखों में अनायास विषाद की छाया तिर गई थी। लेकिन, उसके होंठों पर सन्तोष और शांति की मुस्कराहट कायम थी। उमेश को देखते ही राजदेव बोल उठे, "वाह भाई उमेश, अच्छे समय पर आये। लगता है, आज ही पूरा अध्याय सम्पन्न होना था।"

उमेश कुछ समझ नहीं पाया। उसके हंसते हुए होंठ खुले के खुले रह गये,

मानो पूछ रहे हों कि कौन-सा अध्याय सम्पन्न हो गया ? ललिता ने फिर बात बदलने के विचार से निशा को आदेश दिया कि उमेश के लिए भी नाश्ता ले आए। वह यह देखना भूल गयी कि निशा कमरे में है या नहीं। पुकार सुनकर निशा जब वहा पहुची, तो उमेश को देखते ही वह लजाकर भाग खड़ी हुई। राम अपने हाथ की प्लेट लिए घर के बाहर चला गया। राजदेव ने संक्षेप में उमेश को समझा दिया कि उसे दो-तीन रोज के भीतर अपने लिए एक मकान की व्यवस्था जरूर कर लेनी है। हर पत्नी की यह इच्छा होती है कि वह अपने पति के साथ अलग दुनिया बसाकर रहे। राजदेव ने अपने प्रेस मे उमेश के लिए नौकरी की व्यवस्था कर दी थी। लेकिन, होनहार कुछ और था।

दो दिन बाद ही उमेश ने राजदेव को सूचना दी, "मैंने मकान ठीक कर लिया है। लालभाई की कोठी के पास ही दो कमरे का आउटहाउस है।"

उमेश की बात सुनकर राजदेव चौंक पड़े। उनकी मुख-मुद्रा गंभीर हो गई। उनकी भवो पर बल पड गये। वे कुछ सोचते हुए से बोले,

"लेकिन, वहा तो·· लाल तो अकेला रहता है। निशा को वहां रखना क्या ठीक होगा ?"

"निशा को वहां रखने में क्या हर्ज है ?आखिर लाल भाई तो अपने ही परिवार के आदमी हैं—भाई हैं। और उन्होंने मुझे नौकरी भी दे दी है।"

"तुम्हे नौकरी भी दे दी ? कैसी नौकरी ?"

"काम कुछ नही। मुझे लाल भाई के साथ रहना पड़ेगा। बाडीगार्ड की तरह। तनख्वाह पाच सौ रुपया महीना।"

राजदेव ने कोई जवाब नही दिया। वे वहां से उठकर बाहर के लान में चहलकदमी करने लगे। शाम के समय जब उमेश सामान वगैरह बांधकर निशा के साथ जाने के लिए तैयार हो गया तो राम ने अपने पिता से आकर कहा, "निशा को लाल बाबू के यहां जाने की अनुमति आपने दे दी ?"

राजदेव ने गौर से अपने बेटे के चेहरे को देखकर कुछ पढना चाहा। उन्हें लगा कि राम की आंखों में निशा का भयंकर भविष्य परिलक्षित हो रहा है। राजदेव मन ही मन काप उठे। लेकिन, अपने ऊपर संयम रखते हुए बोले, "उमेश को वही नौकरी भी मिल गई है। निशा उमेश की पत्नी है। मैं अनुमति देने वाला कौन होता हू ?"

"निशा उमेश की पत्नी नहीं है !"

राम की बात सुनकर राजदेव के कान खड़े हो गए। उनके भीतर से

ललिता भी तब तक रुआंसी हो चुकी थी। वह करुणामयी थी। परमार्थ ही उसका धर्म था, कर्म ही उसकी पूजा। लेकिन, स्थिति ऐसी थी कि वह अपने पुत्र के प्रति अविश्वास से भरी हुई थी। उसने अपने ऊपर संयम रखते हुए विनम्र स्वर मे कहा, "सो तो ठीक है निशा। लेकिन, तुम दोनों की शादी करानेवाली मैं कौन होती हूं?"

"एक मां! मेरी दृष्टि मे आप एक मा के अतिरिक्त और कुछ नही हैं। नाते में भी मैं आपके परिवार की सदस्य हूं। इसलिए आपकी जिम्मेवारी हो जाती है। उमेश जी मेरे सामने खड़े है। इनसे पूछ लीजिए। मेरे इनके बीच पति-पत्नी का कोई संबंध नही है।"

उमेश अब तक चुपचाप खड़ा यह दृश्य देख रहा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि घटनाओं ने किस प्रकार का मोड़ कब और क्यों ले लिया? लेकिन, निशा की चिन्ता उसकी समझ मे आ गई। उसने ललिता की ओर बढ़कर कहा, "चाचीजी, निशा को आप चार-पांच रोज़ अपने पास ही रहने दीजिए। इसी बीच मैं शादी की व्यवस्था भी कर लेता हूं।"

उमेश फिर वहा रुका नहीं। सामान वहीं छोड़कर लालनारायण के यहा चला गया। दस दिन तक उसका कही अता-पता नही था। इस बीच निशा निश्चित होकर राजदेव के यहा रहती रही। राम जानबूझ कर निशा से दूर-दूर रहने लगा। उसके हाव-भाव और बात-व्यवहार मे विचित्र परिवर्तन आ गया था। कुछ पूछने पर ही जवाब देता था, स्वत: कुछ नहीं बोलता था। आग्रह होने पर ही भोजन करता था, अपने आप मागकर नही खाता था। हंसने के नाम पर मुस्कराकर रह जाता था। वह दिन भर बाहर-बाहर ही रहा करता और शाम होने पर घर लौटते ही अपने कमरे में बन्द हो जाया करता। दसवें दिन राजदेव ने राम को बुलाया, "क्या हो गया है तुम्हे? कहां मारे-मारे फिरते रहते हो?"

"नौकरी की तलाश मे था। आज मिल गई। कल से ट्रेनिंग मे जाना है। इंस्पेक्टर का काम मिल गया है।"

राजदेव बेटे की बात सुनकर मन ही मन गर्व से भर उठे। उन्हें इस बात की खुशी हुई कि राम ने उनसे सहारे की अपेक्षा नही की। फिर भी ऊपर से कुछ रुष्ट होकर बोले, "बी० ए० तो पास कर लेते। एक साल की बात थी।"

"अगले साल प्राइवेट इम्तिहान दे दूंगा। आप विश्वास रखिए।"

"अब मुझे तुम पर पूरा विश्वास है। पहले नहीं था। लेकिन, यह तो बताओ कि किस विभाग में इंस्पेक्टर बने हो?"

"पुलिस जैसा ही महकमा है। फर्क यह है कि इस विभाग के लोगों को सीमांत क्षेत्रों की निगरानी पर नियुक्त किया जाता है। काफी रोमांचक और रहस्यमय काम है।"—राम ने हंसते हुए कहा।

छः

एक दिन शाम के समय उमेश निशा को लेने आ गया। राम घर पर नहीं था। राजदेव भी कार्यालय मे ही थे। उमेश ने ललिता और निशा को यह पट्टी पढ़ा दी कि शादी लालनारायण के यहां सम्पन्न होगी। तैयारी मे तीन-चार घंटे लगेंगे इसलिए चाचा, चाची और राम भाई बच्चों को लेकर वहीं आ जाएंगे।

ललिता ने निशा को उमेश के साथ भेज दिया।

उन लोगों के जाने के लगभग दो घंटे बाद राम घर आया। राजदेव पहले ही पहुंच चुके थे और चिन्ता के मारे बाहर के लान में चक्कर काट रहे थे। निशा के जाने की बात मालूम होते ही राम अत्यधिक चिन्तित हो उठा। उसकी आंखों के सामने लालबाबू के घर मे आए दिन मनाई जाने वाली रंगरेलियों का दृश्य चल-चित्र की भांति आने-जाने लगा। यदि निशा को भी वही जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया गया तो क्या होगा?

पहली मुलाकात में ही राम को निशा के चरित्र का परिचय मिल चुका था। उसके भीतर एक सती-साध्वी का तेज विद्यमान था। वह छिछोरापन बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। उसे चकाचौंध और बाहरी सम्पदा का लोभ नहीं था। यदि उसके साथ ज़ोर-जबरदस्ती की गई तो वह अपनी जान दे देगी। निशा की दिनचर्या देखकर राम को शुरू में आश्चर्य होता था। वह सुबह सबके सोकर उठने से पहले ही नहा-धोकर तैयार रहती थी। बच्चों को नहा-धोकर तैयार करना, नाश्ता बनाना, सबके कपड़े धो डालना उसका नित्य का काम था। फ़ुर्सत के समय वह लिखने-पढ़ने बैठ जाती थी। हीरामन और नन्दिनी उसके 'गुरु' थे। उसकी यही एकाग्रता, सादगी और जीवन-शक्ति भी आरम्भ मे राम के लिए उद्दीपक बन गई थी। अब राम इन गुणों का पुजारी बन गया था। राम मन ही मन निशा को चाहने लगा था। लेकिन आज तक उसे यह अहसास नहीं हुआ था कि वह निशा से प्यार भी करने लगा है। आज अचानक ही निशा की दुखभरी कातर आंखें राम के मन पर छा गईं। राम को लगा जैसे वे आंखें पुकार-पुकार कर कह रही हों, 'राम,

क्या तुम्हारी समझ में भी इन आंखों की भाषा नही आ रही है ? ये आंखें ही नही, मेरा रोम-रोम तुम्हे पुकार रहा है। मेरे तन-मन में तुम ही व्याप्त हो तो फिर किसे पुकारूं ? तुम सब कुछ जानते हो। तुम्हे मालूम है, लालनारायण आदमी के चोले में पशु है। तुम देख चुके हो, कि लालनारायण की दृष्टि में एक लड़की क्या होती है। फिर भी तुम कठोर बनकर चुप बैठे हो! फिर तुममें और लालनारायण में अन्तर क्या है ?'

राम अचानक ही उठकर मां के पास जा पहुंचा और बोला, "मां, तुमने यह अच्छा नही किया। तुम गाय को कसाई के हाथों में सौंप कर निश्चिन्त बैठी हो। मैं वहां कसाईखाने जा रहा हूं। यदि निशा बच गई होगी तो यहां ले आऊंगा अन्यथा···।" राम वाक्य पूरा किये बिना धड़धड़ाता हुआ घर के बाहर निकल गया।

लालनारायण की कोठी में पहुंचते ही राम का माथा ठनका। बाहर का ड्राइंग रूम खाली था। नौकर से मालूम हुआ कि उमेश पहलवान साहब के बेड रूम में बैठे हैं।

राम ने कड़ककर पूछा, "वह लड़की कहां है—निशा ? और तुम्हारा साहब कहां है ?"

"मुझे नही मालूम, साहब।"

राम ने बेड रूम में जाकर देखा। उमेश पहलवान बिस्तर पर बेसुध पड़ा था। बिस्तर के पास ही छोटी मेज के पास दो कुर्सियां लगी थी। दो खाली बोतलें और दो गिलास मेज के ऊपर पड़े हुए थे। राम को समझते देर नही लगी कि पहले उमेश को खूब पिलाई गई है। राम को बाबूलाल वाली घटना और पारो के साथ अपने कुकर्म की याद हो आई। लालनारायण ने ही उसे यह तरकीब बताई थी। क्षण भर के लिए वह ग्लानि से भर उठा। तभी उसे निशा की याद आयी। वह वहां से सीधे आउट हाउस पहुंचा। कोठी के पीछे छोटा-सा लान था और लान के बाद ही दो कमरे का आउट हाउस। आउट-हाउस के दरवाज़े पर पहुंचते ही राम के कान मे निशा की चीख-चिल्लाहट सुनाई पड़ी। राम को प्रसन्नता हुई कि गाय की ज़िन्दगी अभी बची हुई है। उसने ज़ोर से दरवाज़े को पीटना शुरू किया। भीतर से लालनारायण की लड़-खड़ाती आवाज़ आई, "कौन है ?"

"मैं हूं, राम। दरवाज़ा खोलो।" न जाने क्या सोचकर लालनारायण ने तुरन्त दरवाज़ा खोल दिया और हंसते हुए कहा "देखो इस हरामजादी को,

कइयों के साथ मजे लूटकर भी अपने को सीता-सावित्री सिद्ध करने की कोशिश में जान देने पर तुली हुई है। तुम आ गए, यह अच्छा हुआ। अब हम दोनों मिलकर इसे...।" लालनारायण वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि राम का सधा हुआ तमाचा उसके गाल पर पड़ा। उसका सिर झनझनाहट से भरकर चक्कर खा गया। दूसरा प्रहार उसकी गर्दन पर हुआ और वह जमीन पर गिर गया। राम ने देखा, निशा दोनों हाथों से ब्लाउज़ फट जाने के कारण, निर्वसन हुए उरोजों को ढकने की कोशिश कर रही है। उसकी साड़ी भी तीन-चार जगहों से फट गई है। उसके सिर से खून निकल रहा है। बिखरे हुए बालों के भीतर से निशा की कातर आंखें वैसी ही लग रही थीं जैसी कातर आंखें उसने अपने घर बैठे-बैठे अपने मानस पटल पर कल्पना में देखी थीं। राम ने पलंग पर बिछे चादर को उठाकर अपने हाथों से निशा को ढक दिया। निशा उसके कंधे पर झुककर रोने लगी। उस स्थिति में भी राम को निशा का स्पर्श बहुत सुखदायी लगा। पहली बार राम ने अनुभव किया कि नारी के स्पर्श में जीवन है, शक्ति है, सृजन की प्रेरणा है। राम कुछ देर तक निशा को कलेजे से लगाये खड़ा रहा। वह आश्वासन के कोई शब्द बोल नहीं सका। दोनों उस जगह इसी प्रकार खड़े रहे कि निशा अचानक अलग होती हुई बोली, "अब मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दो। मेरी ज़िन्दगी में यही सब लिखा है। अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। अब या तो इसी तरह की ज़िन्दगी चलेगी या... या सोचूंगी कि मृत्यु पाने का आसान रास्ता किधर है।"

राम ने उसके होठों पर हाथ रखते हुए अवरुद्ध कंठ से कहा, "मेरे साथ चलो।"

"कहां?"

"चलो तो।" —राम ने निशा के कंधे पर हाथ रख दिया और उसे सहारा देकर ले चला। बाहर आकर दोनों ने टैक्सी की और घर आ गए। राम निशा को लेकर सीधे अपनी मां के पास पहुंचा और जब मां ने अचकचा कर उन दोनों को देखा तो राम ने निशा के शरीर पर की चादर झटके से अलग कर दी और कहा, "इसे मां की नजर से देखो। खैरियत हुई कि मैं समय पर पहुंच गया था। ऐसी भी सामाजिक प्रतिष्ठा और मर्यादा क्या, जो एक बेसहारा लड़की की इज्जत को एक खिलौना समझे। मां, यह भी किसी की बेटी है। अपनी इज्जत बचाने के लिए जितनी आग इस लड़की में है उतनी आग यदि समाज की सभी नारियों में हो जाय तो मर्यादा और प्रतिष्ठा की

रक्षा के लिए नियम और कानून की आवश्यकता न पड़े।"—इतना कहकर राम कमरे से बाहर चला गया।

दूसरे दिन सुबह होते ही राम ने अपने पिता से कहा, "कल से मैं अपने घर नहीं आ सकूंगा। ट्रेनिंग पाने वालों को कैम्प में ही रहना होगा। लेकिन, निशा यहीं रहेगी। अब इस घर से वह निकाली नहीं जाएगी।"

उद्धारक नागाओं के गाव मे राजदेव को आए कई रोज बीत गए। जिसे डाक्टर को बुलाने के लिए कोहिमा भेजा गया था वह दसवें रोज की सुबह तक लौटकर नहीं आया। राजदेव की हालत दिन-ब-दिन बिगडती चली गई। पांव का दर्द कभी-कभी इतना बढ़ जाता था कि राजदेव उसे बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। दिन मे कई बार वे मूर्च्छित हो जाते थे। यह मूर्च्छा कभी-कभी घंटों तक बनी रहती थी। वे अत्यधिक पीले और दुर्बल होकर बिस्तरे से सट गए। उन्हें बोलने मे कष्ट होने लगा।

नागाओं के उस दल के नायक का नाम मेडोचो था। मेडोचो के घर में ही राजदेव को लाकर रखा गया था। मेडोचो की आयु लगभग बयालीस वर्ष होगी। उसके शरीर की बनावट ऐसी थी कि वह पच्चीस-छब्बीस वर्ष से ज्यादा का नहीं दीखता था। गठे-ढले हुए शरीर के किसी अंग पर चर्बी का नामोनिशान नहीं था। छोटी-छोटी चमकीली आंखो में वेदना छलक आती, जब वह राजदेव को तड़फता देखता। मेडोचो कुशल शिकारी और बहुत अच्छा योद्धा था। उसकी दो कुमारी बेटियां थीं—एक बेनी, दूसरी डीनो। वे दिन-रात राजदेव की सेवा मे लगी रहती थी। सोलह-सत्रह साल की डीनो थी और दूसरी बेटी बेनी बीस-बाईस साल की। दीखने मे वे जुड़वां लगती थीं। अपने पिता की तरह ही उन दोनो की देहयष्टि सुगठित, सुचिक्कन और अत्यधिक आकर्षक थी। गौरवर्ण मुखमंडल पर काले-काले बालों की लटें अठखेलियां करती रहती। मेडोचो की पत्नी पक्की गृहिणी थी।

जब दसवें रोज भी उसका आदमी वापस नही आया तब मेडोचो की बेचैनी अत्यधिक बढ़ गयी। उसे आभास हो गया कि यदि शीघ्र ही राजदेव के पाव का उपचार नही किया गया तो मौत को टाल सकना असंभव हो जाएगा, क्योंकि राजदेव की मूर्च्छा का क्रम और अवधि अत्यधिक बढ़ गई थी। मूर्च्छा की स्थति में राजदेव का चेहरा पीला पड़ जाता, उनके होंठ टेढ़े हो जाते, सास तेज चलने लगती। छटपटाहट में वे हाथ-पांव पटकने लग जाते।

उस समय मेडोचो की दोनों लड़कियों और उनकी मां के लिए राजदेव के हाथ-पांव को पकड़कर स्थिर रख सकना बहुत ही कठिन हो जाता। मेडोचो इस हृदयद्रावक दृश्य को देख नही पाते और अपने घर से बाहर निकल आते।

एक कठिनाई यह पैदा हो गई कि राजदेव अब हाथ-पांव हिलाने मे असमर्थ हो गए थे। इसलिए, वे इशारे से कोई भी बात, समझा नही पाते थे। जो कुछ बोलते, इतना धीमा बोलते कि किसी की समझ में कुछ नही आता था। नतीजा यह हुआ कि मेडोचो का परिवार परवश और मूक तमाशाई बनकर राजदेव की दिन-ब-दिन बिगड़ती हुई दशा देखकर घबरा उठा। मेडोचो को एक उपाय सूझा।

उसी गांव मे टेमजन रहते थे, जो 'विद्रोही' नागाओ की फौज के एक सरदार थे। उनकी लड़की कोहिमा रह आई थी, इसलिए हिन्दी जानती थी। उसका नाम था नोरसिंग। मेडोचो की समस्या सुनकर टेमजन उत्साहपूर्वक राजदेव को अपने घर ले आने के लिए तैयार हो गए। नोरसिंग की प्रसन्नता की सीमा भी नही रही। उसे लगा, जैसे उसके घर ईसामसीह आ गए हों। वह सब कुछ भूलकर राजदेव की सेवा मे लग गयी।

बारहवें दिन राजदेव की स्थिति चिन्ताजनक हो गई। गांव के सभी नागा टेमजन के घर के बाहर इकट्ठे हो गए। जो नागा जंगलों को चीरकर, पहाड़ियो को रौंदते हुए आखेट और युद्ध के खतरनाक कर्मों मे आनन्द का अनुभव करते हैं, जो नागा वर्षों से भारतीय पुलिस और फौज से टक्कर लेते हुए भी थकान का अनुभव नही करते थे, उन नागाओं के हृदय में एक अनजान आगन्तुक घायल अतिथि के प्रति ऐसी हार्दिक सहानुभूति और स्नेह की कल्पना भारत के मैदानी इलाके के लोग नहीं कर सकते।

मेडोचो के साथ टेमजन घर के बाहर खड़े दूर से आनेवाली पगडंडी को देख रहे थे। जंगलों और पहाड़ियों से भरे क्षेत्र में दृष्टिपथ सीमित हो जाता है। मेडोचो जंगल का निवासी था। आखेट-कर्म में दक्ष और व्यूह-रचना मे कुशल था। उसके कान किसी भी संकेत अथवा ध्वनि या हलकी से हलकी आहट पा लेने के अभ्यस्त थे। अचानक ही मेडोचो की आंखें प्रसन्नता से चमक उठी। दृष्टि-पथ पर कोई चीज नजर नही आ रही थी। लेकिन, उसकी श्रव्य-शक्ति ने उसे आगाह कर दिया था कि डाक्टर आ रहा है। मेडोचो ने टेमजन को उत्साह से भरकर देखा। टेमजन भी समझ गए थे कि कोई जीप आ रही

है। उन्होंने कहा, "मेडोचो, भीतर जाकर खबर कर दो। मेरी बेटी नोरसिंग की चिन्ता दूर हो जाएगी।"

मेडोचो भागा-भागा भीतर जा पहुंचा और नोरसिंग से बोला, "जीप आ रही है। इसका मतलब हुआ कि डाक्टर भी आ रहा है।"

नोरसिंग प्रसन्नता के मारे बाहर की ओर दौड़ पड़ी। डाक्टर पहाड़ी की ढलान पर चढ़ते हुए चले आ रहे थे। साथ में दो नागा डाक्टर का सामान लिए आ रहे थे। टेमजन की नजर उसी तरफ थी कि नोरसिंग आ पहुंची। उसे देखते ही, न जाने क्यों, टेमजन की आंखों में उदासी छा गयी। बेटी को देखते ही टेमजन ने स्नेहसिक्त स्वर में कहा, "डाक्टर आ गया बेटी, अब अच्छा होकर तुम्हारा यह अतिथि भी चला जाएगा।"

नोरसिंग ने सिर झुका लिया और आंखों से जमीन की ओर देखती हुई बोली—

"मैं बहादुर बाप की बेटी हूं। जब मौत से नहीं डरती तब आने-जाने से क्यों डरूं?"

पादरी डाक्टर तेजी से पगडंडी चढ़ते हुए ऊपर आ पहुंचे। विलम्ब का कारण पूछने का समय नहीं था। टेमजन और मेडोचो डाक्टर को लेकर सीधे राजदेव के बिस्तर के पास पहुंचे। राजदेव उस समय स्थिर पड़े हुए थे। पादरी ने बड़े मनोयोग से जख्म की परीक्षा की। बेहोशी की हालत में भी राजदेव बहुत जोरों से कराह उठते थे। जांच-पड़ताल के बाद डाक्टर उठा और मेडोचो को दूसरे कमरे में ले जाकर बोला, "काफी देर हो चुकी है। घुटनों तक जहर फैल गया है। इसे काटना होगा।"

मेडोचो कुछ देर तक आवाक् खड़ा रहा। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। तब तक टेमजन भी वहां आ पहुंचे और उन्हींके साथ आ गई नोरसिंग। डाक्टर ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा, "जल्दी फैसला करना होगा, वरना जान का खतरा है।" डाक्टर की अन्तिम बात से मेडोचो चौंक पड़ा। लेकिन, वह कोई जवाब नहीं दे सका। टेमजन अनुभवी आदमी थे। उन्होंने डाक्टर से सवाल किया, "यहां इस जंगल में, यह कैसे संभव है! और मैं यह भी नहीं जानता कि यह अतिथि कौन है और कहां का है। यदि इसे कुछ हो गया तो?"

"तो क्या? पांव काट देने से बचने की पूरी संभावना है और यदि पांव नहीं काटा गया तो यकीनन यह आदमी मर जाएगा। मेरे पास ..."

राजदेव के चेहरे पर विस्मय की रेखाएं उभर आईं। उन्हें कई रोज से होश नहीं था, इसलिए इस सूचना पर वे आश्वस्त भी हुए। उन्होंने पूछा, "कहां से डाक्टर आए हैं?"

"कोहिमा से। पादरी डाक्टर है। उन्होंने ही आपकी जान बचाई है।"

राजदेव ने अपना सिर टेढ़ा करके नोरसिंग को देखा। उन्हे लगा जैसे नन्दिता बड़ी हो गई है। उनकी आंखों में कृतज्ञतापूर्ण स्नेह उमड़ आया। अनायास ही उनकी दाहिनी हथेली नोरसिंग के कपोल सहलाने लगी। राजदेव बोले कुछ नहीं। लेकिन, उनकी आंखें, बल्कि उनके रोम-रोम ज़ोर-ज़ोर से कह रहे थे कि 'तुम नोरसिंग नहीं, तुम नन्दिनी हो, तुम निवेदिता हो। मैं घर से दूर नहीं हूं। मैं घर में ही हूं। ललिता मेरे पास है। डाक्टर ने नहीं, तुम लोगों के प्यार ने मुझे बचाया है। तुम सब ललिता के पुण्य की प्रतिछाया हो।'

ये सब बातें भाव के सूक्ष्म रूप मे राजदेव की आखों में झलक आई थीं। वे अपलक नोरसिंग को निहारते रहे। सोचते रहे, क्या होता है घर? राम को भी इसी जंगली इलाके में प्राणदान मिला था। राम अब उनसे कुछ नहीं छिपाता है। उसके जीवन को मोड़ देने वाली जो भी घटना घटित होती है, वह उसे पिता के समक्ष रख देता है—ज्यो का त्यों। राजदेव सोचते रहे···घर के लिए कितना कुछ करना पड़ता है, कितना गंवाना पड़ता है, अपने अस्तित्व तक की आहुति देनी पड़ती है। और इन सहज, सरल, सुन्दर नागाओं के लिए उन्होंने क्या किया कि इतनी सेवा मिल रही है! क्या यह सब ललिता के पुण्य का सुफल नहीं है?···राजदेव की आखों के सामने ललिता का कर्तव्यनिष्ठ स्वरूप साकार हो उठा।···

ललिता प्लूरसी से पूरी तरह ठीक भी नहीं हुई थी कि लालनारायण को पीलिया रोग हो गया। उन दिनों दिल्ली मे चारों ओर पीलिया रोग का आतंक छाया हुआ था। महामारी की तरह यह बीमारी पूरे शहर मे फैली हुई थी। उन दिनों लालनारायण अपने चाचा राजदेव के साथ ही रहता था। ललिता ने अपने स्वास्थ्य की रंचमात्र भी परवाह नहीं की और वह लाल-नारायण की सेवा में जुट गई। ललिता का सुधरा हुआ स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। फिर भी उसे इस बात की चिन्ता नहीं हुई। लालनारायण के मां-बाप और दोनों बहिनें भी दिल्ली जा पहुंची। ललिता अकेली ही उन सबकी खातिरदारी और लालनारायण की तीमारदारी करती रही। लालनारायण

पूरा सामान नही है। बेहोशी की दवा देनेवाला कोई डाक्टर भी नही है। लेकिन, इमरजेन्सी आपरेशन करना होगा।"

वही हुआ जो डाक्टर चाहता था। आपरेशन में दो घंटे लग गए। कमरे मे आपरेशन के लायक रोशनी भी नही थी आपरेशन का पूरा साजो-सामान भी नही था। लेकिन, डाक्टर मे निष्ठा थी। अंधेरा उतरने से पहले आपरेशन का काम सम्पन्न हो गया। मेडोचो की दोनों बेटियां और नोरसिंग सांस रोके डाक्टर की मदद करती रही। मेडोचो जैसा बहादुर आदमी भी वह दृश्य देख नहीं सका और दो घंटे तक घर के बाहर ही चहल-पहल करता रहा। यही हाल टेमज़न का था।

राजदेव को रात-भर होश नही आया। सुवह जब सूरज पेड़ों की फुनगी पर आया तब जाकर राजदेव ने आँखें खोली। छत पर से घूमती हुई उनकी नज़र नोरसिंग पर जाकर अटक गई। उन्होने इसमे पहले नोरसिंग को तीन-चार बार मेडोचो के घर अवश्य देखा था, लेकिन, वह समझ नहीं पा रहे थे कि इस समय वह कहां है और उनके पास नोरसिंग क्यों बैठी है ? बेनी और डीनो कहां गईं ?

नोरसिंग ने बड़ी भक्ति से राजदेव की ओर देखा और उनके सिर पर हाथ फेरने लगी। राजदेव एकटक नोरसिंग को देखते रहे। उन्हे लगा, जैसे वे घर पहुंच गए हों और नन्दिनी उनके पास बैठी है। नोरसिंग शायद उनके मन की जिज्ञासा समझ गई थी। उसने मुस्कराते हुए कहा, "अब आप मेडोचो के घर नहीं हैं, मेरे घर में हैं। मेरा नाम है नोरसिंग। अब आपकी तबीयत कैसी है ?"

बारह रोज बाद राजदेव के होंठों पर मुस्कराहट थिरक उठी। तब तक राजदेव को पता नही था कि उनकी दाहिनी टाग काट दी गई है। वे स्वास्थ्य मे सुधार महसूस कर रहे थे। उनकी मुस्कराहट में सुधार की अभिव्यंजना थी। उन्होने धीमे स्वर मे कहा, "अच्छा हूं। दायें पांव में हलका-हलका दर्द है।" प्यास लगी है।" नोरसिंह बड़े जतन से उनके मुख में चम्मच से पानी डालती रही। फिर रूमाल से उनका मुह पोंछ दिया। राजदेव नोरसिंग को देखे जा रहे थे। उनके दिमाग मे राम का संस्मरण चलचित्र की तरह घूम रहा था। नोरसिंग न जाने क्यों शर्म का अनुभव करने लगी और उसे छिपाने के लिए बोली, "पादरी डाक्टर आ गए हैं। उन्होंने ही आपका इलाज किया है। बुला लाती हूं।"

राजदेव के चेहरे पर विस्मय की रेखाएं उभर आईं। उन्हे कई रोज़ से होश नहीं था, इसलिए इस सूचना पर वे आश्वस्त भी हुए। उन्होंने पूछा, "कहा से डाक्टर आए हैं ?"

"कोहिमा से। पादरी डाक्टर है। उन्होने ही आपकी जान बचाई है।"

राजदेव ने अपना सिर टेढ़ा करके नोरसिंग को देखा। उन्हें लगा जैसे नन्दिता बड़ी हो गई है। उनकी आंखों में कृतज्ञतापूर्ण स्नेह उमड़ आया। अनायास ही उनकी दाहिनी हथेली नोरसिंग के कपोल सहलाने लगी। राजदेव बोले कुछ नहीं। लेकिन, उनकी आंखें, बल्कि उनके रोम-रोम जोर-ज़ोर से कह रहे थे कि 'तुम नोरसिंग नही, तुम नन्दिनी हो, तुम निवेदिता हो। मैं घर से दूर नही हूं। मैं घर में ही हूं। ललिता मेरे पास है। डाक्टर ने नहीं, तुम लोगों के प्यार ने मुझे बचाया है। तुम सब ललिता के पुण्य की प्रतिछाया हो।'

ये सब बातें भाव के सूक्ष्म रूप में राजदेव की आंखों मे झलक आई थी। वे अपलक नोरसिंग को निहारते रहे। सोचते रहे, क्या होता है घर ? राम को भी इसी जंगली इलाके में प्राणदान मिला था। राम अब उनसे कुछ नहीं छिपाता है। उसके जीवन को मोड़ देने वाली जो भी घटना घटित होती है, वह उसे पिता के समक्ष रख देता है—ज्यो का त्यों। राजदेव सोचते रहे…घर के लिए कितना कुछ करना पड़ता है, कितना गंवाना पड़ता है, अपने अस्तित्व तक की आहुति देनी पड़ती है। और इन सहज, सरल, सुन्दर नागाओं के लिए उन्होंने क्या किया कि इतनी सेवा मिल रही है ! क्या यह सब ललिता के पुण्य का सुफल नही है ?…राजदेव की आंखों के सामने ललिता का कर्तव्यनिष्ठ स्वरूप साकार हो उठा।…

ललिता प्लूरसी से पूरी तरह ठीक भी नहीं हुई थी कि लालनारायण को पीलिया रोग हो गया। उन दिनों दिल्ली मे चारों ओर पीलिया रोग का आतंक छाया हुआ था। महामारी की तरह यह बीमारी पूरे शहर मे फैली हुई थी। उन दिनों लालनारायण अपने चाचा राजदेव के साथ ही रहता था। ललिता ने अपने स्वास्थ्य की रंचमात्र भी परवाह नहीं की और वह लालनारायण की सेवा में जुट गई। ललिता का सुधरा हुआ स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। फिर भी उसे इस बात की चिन्ता नहीं हुई। लालनारायण के मां-बाप और दोनों बहिनें भी दिल्ली जा पहुंची। ललिता अकेली ही उन सबकी खातिरदारी और लालनारायण की तीमारदारी करती रही। लालनारायण

को पीलिया रोग ने गंभीर रूप से जकड़ लिया था। महीने भर की अथक और अनवरत सेवा-शुश्रूषा से लालनारायण तो रोगमुक्त हो गया, लेकिन, उसके स्वस्थ होते ही उसके पिता पुष्कर ने बिस्तर पकड़ लिया। ललिता फिर भी नहीं घबराई। वह दूने उत्साह से पुष्कर की तीमारदारी करने लगी। तभी राजदेव की छोटी लड़की निवेदिता को टाइफायड हो गया। ललिता जीवन में ऐसी कसौटी पर कभी नहीं चढ़ी थी। राजदेव चाहते थे कि वे अपने भाई पुष्कर को अस्पताल में दाखिल करा दें। ललिता सहमत नहीं हुई, बोली, "ये हमारे मेहमान ही नहीं, घर के अभिभावक भी हैं। इन्हें अस्पताल भेजकर अपना धर्म और ईमान क्यों गंवाना चाहते हो?"

राजदेव बीमारी और तीमारदारी से तंग आ चुके थे। इतना कुछ करने पर भी उनके रिश्तेदार सन्तुष्ट नहीं थे। हर रोज कोई न कोई अप्रिय घटना घटती ही रहती थी। यह सब देखकर राजदेव को अपना अतीत याद हो आता था। ललिता का तर्क उन्हें भाया नहीं। उन्होंने कहा, "अभिभावक ये तभी तो मैं जीविकोपार्जन के लिए दर-दर की ठोकरें खाता रहा और ये संयुक्त परिवार की आमदनी की पाई-पाई अपने बाल-बच्चों के भविष्य की आवश्यकताओं के लिए सहेजते रहे। जब तुम गांव के घर में बीमार पड़ी रहती थी तब इनकी जेब से दवा के लिए छदाम भी नहीं निकलता था। जान-बूझकर गरीबी का स्वांग किया करते थे और अपनी बेटियों के विवाह के बाद बटवारा होते ही न जाने कहां से कारूं का खजाना हाथ लग गया कि देखते-देखते नया मकान पिटवा लिया, जमीन खरीद ली और आज पूरा गांव इनके कर्ज के नीचे दबा हुआ है।"

ललिता को सब कुछ याद था। कुम्भीपाक नरक का अर्थ उसने किताबों में पढ़ा था। उस अर्थ को भोगने का अवसर उसे तब मिला, जब विवाहिता बनकर वह राजदेव के घर में आई थी। उस अर्थ को भोगते समय ललिता के मन में किसी के प्रति घृणा नहीं उपजी। वह समझती रही कि सुकर्म उसने किया नहीं, तो सुफल कैसे चखेगी! वह महसूस करती रही कि उसने राजदेव को उसके पिता, भाई और भाभी से छीन लिया है। राजदेव पर पहला अधिकार राजदेव के परिवार का था। उस अधिकार से ललिता ने राजदेव के परिवार को वंचित कर दिया। इसलिए इसका फल ललिता को भुगतना ही होगा। ललिता ने बड़े ही संयत स्वर में राजदेव से कहा, "यदि हरेक आदमी वैसा ही करे, जैसा बड़े भाई ने किया तो प्रलय आ जायेगा। समाज रहेगा ही नहीं। हम

पर थोड़ा-थोड़ा ऋण सबका है—परिवार का, समाज का और देश का। यह ऋण उतारकर ही हम धर्म के भागी बन सकते हैं। बीमार कोई भी हो, अपना या पराया, उसकी तीमारदारी वही कर सकता है, जिसमें तितीक्षा हो। तितीक्षा मनुष्य को मनुष्य बनाती है।"

"तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। प्लूरिसी से पूरी तरह मुक्त भी नहीं हुई थी कि तीमारदारी का चक्कर चल पड़ा। मालूम नहीं यह कब तक चलता रहेगा। यदि तुम दुबारा अस्वस्थ हुई, तो सोच सकती हो कि क्या होगा?"

"क्या होगा? क्या मैं अमर होकर आई हूं। यदि दूसरों की सेवा करते-करते खत्म हो जाऊं तो इससे अच्छी बात क्या होगी!"

"दूसरों की सेवा तो तब करो जब अपनी सेवा से फुरसत मिले। निवेदिता छोटी-सी बच्ची है। इस उम्र में टाइफायड होना बहुत खतरनाक है।"

"अपनी सेवा को सेवा नहीं कहते हैं। सेवा का अर्थ ही है अपने स्वार्थ की कुरबानी। यह कुरबानी ही शुभ कर्म है, अनमोल बीज है, जिसकी बदौलत निवेदिता या हम सब फूलें-फलेंगे। प्रतिशोध पशुवृत्ति है, परमार्थ मानवोचित।"......

सच ही ललिता की बातें बाद में चलकर भविष्यवाणी सिद्ध हुईं। स्वयं वह दूसरों के हाथों जीवन भर कष्ट झेलती रही। जब उसे सहारे की आवश्यकता थी, तब किसी ने उसकी ओर रुख भी नहीं किया। फिर भी वह शिकवा-शिकायत से कोसों दूर रही। इतना ही नहीं, उससे जितना बन पड़ा, सहज भाव से सबकी सेवा करती रही। सेवा का अर्थ उसे ललिता में ही मिला। जो कुछ अपने लिए या अपनों के लिए किया जाय वह सेवा नहीं है, वह तो स्वार्थ है। अपने-पराये का भेद करना पशुता है। जिस कर्म के द्वारा दूसरों का भला हो, दूसरों को सुख-शान्ति मिले, उसी कर्म में सेवा की अभिव्यंजना है।

राजदेव को एक-एक घटना याद है। ललिता को जब पहली बार प्रसव-पीड़ा हुई, राजदेव पटना में सौ रुपये माहवार पर प्रूफ-रीडर थे। ललिता जानती थी कि राजदेव जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इसलिए एक जीवनसंगिनी का धर्म निभाते हुए उसने अपनी संकटमय स्थिति की सूचना अपने पति को नहीं दी। ललिता ने सोचा कि यहां जेठ हैं, ससुर हैं, जिठानी हैं, मदद मिल ही जायेगी। लेकिन, हुआ यह कि वृद्ध ससुर परवश स्थिति में बैठे रहे। जिठानी ने अपने पति से कह दिया कि ऐसी झूठी प्रसव-वेदना ललिता

पहुंचा, किन्तु, पल भर बाद ही उन्होंने आंखें खोल दी और उनके होंठों पर मुस्कराहट बिखर गई। वे बोले, "आपने ठीक ही किया होगा। शायद मेरी जान बचाने के लिए यही एक उपाय रह गया हो।"

"जी हां, जहर तेजी से फैलता जा रहा था। यदि मुझे यहां पहुंचने में तीन-चार घण्टे की देर हो जाती तो मैं आपको बचा भी नही पाता। जांच-पड़ताल के बाद ही आपका पांव काट डालने का निश्चय करना पड़ा। नोरसिंग का निश्चित मत था कि आपकी जान बचाने के लिए जो करना पड़े, वह तुरत किया जाय। लेकिन, चिन्ता की कोई बात नही, घुटने के नीचे बनावटी पाव लगा दिया जायगा। थोड़े अभ्यास के बाद आप आसानी से चल-फिर सकेंगे। कुछ दिन बाद तो याद करने पर मालूम होगा कि एक पांव का हिस्सा बनावटी है।"

"ठीक ही है। कहां चलना-फिरना है मुझे! जीवन भर भागता रहा। अब तो लगता है कि आज तक अपने-आपसे ही भागता रहा हूं। जहां सब कुछ मिल सकता था, वहां भी नहीं ठहरा। यह अच्छा ही हुआ कि चलने-फिरने पर नियन्त्रण लग गया है।"

दुख के अतिरेक मे प्राय: सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। राजदेव ने महसूस किया कि वे व्यर्थ ही जीवन भर हाथ-पांव पटकते रहे हैं। उन्नति और ख्याति उन्हें बेशक मिली लेकिन, मन.शांति से वे हमेशा ही दूर रहे। वह शान्ति तो उन्हे अपने अन्त:करण में झांकने से ही मिल सकती थी। जीवन भर वे छोटे-छोटे अहंकार बटोरते रहे। इस सिलसिले में होड़ लगानी पड़ी और आशा-निराशा का सुख-दुख झेलना पड़ा। अपने अस्तित्व के अहसास ने दूसरों से अपेक्षा करने की प्रवृत्ति पैदा की। फिर शांति कहां? भाग-दौड़ का सिल-सिला जारी रहा। ललिता ने कभी किसी से कोई अपेक्षा नहीं की। वह जीवन भर अपना सुख-शान्ति और अपनी इच्छाएं बांटती रही। ललिता ने उसका प्रतिदान पाना कभी चाहा नही। राजदेव ने महसूस किया कि वह प्रतिदान उनके प्रति और उनके बच्चों के जीवन में पुण्य बनकर प्रकट हो उठा। ललिता ने यदि किसी से कुछ चाहा. तो केवल अपने पति से—राजदेव से। इस चाह के पीछे भी कोई स्वार्थ नहीं था, समर्पण की भावना थी, अलौकिक निष्ठा थी। ललिता के लिए राजदेव सब कुछ थे। इसलिए वह केवल उन्ही से अपेक्षा रखती थी।

ललिता के व्यक्तित्व का एक ही पक्ष राजदेव की समझ में नही आया। राम के प्रति वह अत्यधिक आसक्त थी। राम की भयंकर से भयंकर दुर्बलता

को कई वार हो चुकी है। नतीजा यह हुआ कि शहर से डाक्टर या प्रशिक्षित नर्स को बुलाना तो दूर, गांव मे प्रसव कराने के लिए जो परम्परागत विशेषज्ञ चमइन (चमारिन) होती है, उसे तब बुलावा भेजा गया, जब राम को जन्म देकर ललिता अत्यधिक दर्द के कारण बेहोश हो चुकी थी।

राम के जन्म के वाद वारह रोज तक ललिता प्रसूती घर मे बन्द रही। न तो उसे कोई दवा दी गई और न कई पौष्टिक आहार। भगवान और भाग्य के भरोसे ललिता ने वारह दिन गुजार दिये। तेरहवें दिन राजदेव ने गांव आकर ललिता की हालत देखी तो सन्न रह गये। ललिता के शरीर का ढांचा शेष रह गया था। आखें धंस गई थी। चेहरे पर खून का आभास तक नही था। अंधेरे कमरे की धरती पर पुरानी चिथड़ी बनी रजाई पड़ी थी, जिस पर ललिता लेटी हुई थी। उस कमरे की दीवारें धुएं से काली पड़ गई थीं। कमरे में कई स्थलों पर मकड़ों के काले-काले जाल लटक रहे थे। घर के भीतर कई रोज से झाड़ू नही दी गई थी। यह सब देखकर ही राजदेव को आभास मिल गया कि ललिता किस तरह की जिन्दगी जीती रही। घर में सभी मौजूद थे। बड़े भाई, पिता और भाभी, लेकिन किसी ने भी ललिता की सुधि नही ली।'''

ऐसी कई घटनाएं राजदेव के दिमाग में घूम गई और आज जब उन्होने एक अनजान वन्य जाति के नागा परिवार का सहज स्नेह देखा, तब उन्हे आश्चर्य नही हुआ। केवल ललिता की बातें और उसके कर्म आखों के आगे पुण्य बनकर उद्‌भासित हो उठे।

पादरी डाक्टर ने नागा नायक टेमजन के साथ ही कमरे में प्रवेश किया। राजदेव से हालचाल पूछा। राजदेव ने मुस्कराकर दोनों हाथ जोड़ दिए।

डाक्टर वहीं बैठ गया और राजदेव के दोनों हाथ पकड़कर बोला, "आपको मालूम है कि मैंने क्या किया ?"

"हां, आपने मुझे जीवन-दान दिया है।"

'जीवन दान तो भाई मेडोचो, टेमजन और इनके परिवार ने दिया, मैंने तो घुटने के पास से आपका दाया पैर काट दिया है।"

अचानक राजदेव की आंखें बन्द हो गईं। पल भर मे ही उनका सम्पूर्ण अतीत, वर्तमान और प्रतिबंधित भविष्य एकाकार होकर चक्रवाल की तरह मानस में घूम गया। जो जीवन भर चलता रहा, खटता रहा, वह अर्द्ध पंगु बनकर किस प्रकार कठोर समय का सामना कर पायेगा ? उन्हे असह्य आघात

पहुंचा, किन्तु, पल भर बाद ही उन्होंने आंखें खोल दी और उनके होंठों पर मुस्कराहट बिखर गई। वे बोले, "आपने ठीक ही किया होगा। शायद मेरी जान बचाने के लिए यही एक उपाय रह गया हो।"

"जी हां, जहर तेजी से फैलता जा रहा था। यदि मुझे यहां पहुंचने में तीन-चार घण्टे की देर हो जाती तो मैं आपको बचा भी नही पाता। जांच-पड़ताल के बाद ही आपका पांव काट डालने का निश्चय करना पड़ा। नोरसिंग का निश्चित मत था कि आपकी जान बचाने के लिए जो करना पड़े, वह तुरत किया जाय। लेकिन, चिन्ता की कोई बात नही, घुटने के नीचे बनावटी पांव लगा दिया जायगा। थोड़े अभ्यास के बाद आप आसानी से चल-फिर सकेंगे। कुछ दिन बाद तो याद करने पर मालूम होगा कि एक पांव का हिस्सा बनावटी है।"

"ठीक ही है। कहां चलना-फिरना है मुझे! जीवन भर भागता रहा। अब तो लगता है कि आज तक अपने-आपसे ही भागता रहा हूं। जहां सब कुछ मिल सकता था, वहां भी नही ठहरा। यह अच्छा ही हुआ कि चलने-फिरने पर नियन्त्रण लग गया है।"

दुख के अतिरेक मे प्रायः सत्य का साक्षात्कार हो जाता है। राजदेव ने महसूस किया कि वे व्यर्थ ही जीवन भर हाथ-पांव पटकते रहे हैं। उन्नति और ख्याति उन्हे बेशक मिली लेकिन, मनःशांति से वे हमेशा ही दूर रहे। वह शान्ति तो उन्हें अपने अन्तःकरण में झांकने से ही मिल सकती थी। जीवन भर वे छोटे-छोटे अहंकार बटोरते रहे। इस सिलसिले में होड़ लगानी पड़ी और आशा-निराशा का सुख-दुख झेलना पड़ा। अपने अस्तित्व के अहसास ने दूसरों से अपेक्षा करने की प्रवृत्ति पैदा की। फिर शांति कहां? भाग-दौड़ का सिल-सिला जारी रहा। ललिता ने कभी किसी से कोई अपेक्षा नही की। वह जीवन भर अपना सुख-शान्ति और अपनी इच्छाएं बांटती रही। ललिता ने उसका प्रतिदान पाना कभी चाहा नहीं। राजदेव ने महसूस किया कि वह प्रतिदान उनके प्रति और उनके बच्चों के जीवन में पुण्य बनकर प्रकट हो उठा। ललिता ने यदि किसी से कुछ चाहा, तो केवल अपने पति से—राजदेव से। इस चाह के पीछे भी कोई स्वार्थ नही था, समर्पण की भावना थी, अलौकिक निष्ठा थी। ललिता के लिए राजदेव सब कुछ थे। इसलिए वह केवल उन्ही से अपेक्षा रखती थी।

ललिता के व्यक्तित्व का एक ही पक्ष राजदेव की समझ मे नहीं आया। राम के प्रति वह अत्यधिक आसक्त थी। राम की भयंकर से भयंकर दुर्बलता

को भी वह नज़रअन्दाज़ कर जाती थी। लेकिन, जब राम ने सही क़दम उठाना आरम्भ किया तब वह, न जाने क्यों, उससे दूर होने लगी।

निशा और राम एक.दूसरे को चाहने लगे थे। राम ने निशा से विवाह करने का निश्चय कर लिया। घुमा-फिराकर यह बात उसने अपनी मां से कह भी दी। ललिता ने राम के इस विचार को बिल्कुल पसन्द नहीं किया। प्रशिक्षण प्राप्त करते ही राम की नियुक्ति 'राओ' नामक संगठन में हो गयी। यह संगठन केन्द्रीय सरकार के अधीन था और इसका काम भी लगभग पुलिस विभाग जैसा ही था। फ़र्क़ यह था कि 'राओ' संगठन का कार्य-क्षेत्र सीमान्त प्रदेश में था। नियुक्ति के बाद ही राम को व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र में जाना था। वह चाहता था कि सीमान्त क्षेत्र में जाने से पूर्व उसका विवाह निशा से हो जाय ताकि वह निशा की ओर से निश्चिन्त हो सके और निशा भी अपने आपको सुरक्षित महसूस कर सके। राम जानता था कि उसके पिता आनाकानी नहीं करेंगे। अब उसे भय था तो केवल मां से। एक दिन हिम्मत करके उसने मां के सामने प्रस्ताव रख ही दिया। ललिता शायद पहले से ही तैयार बैठी थी। प्रस्ताव सुनते ही बोली, "मेरे जीते जी यह यह सम्भव नहीं है।"

"क्यों संभव नहीं है ? निशा में क्या बुराई है ?"

"निशा में कोई बुराई नहीं है। वह इतनी अच्छी है कि तुम उसके योग्य नहीं हो।" राम हतप्रभ होकर अपनी मां का मुह देखता रह गया। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या जवाब दे। उसने टूटते हुए स्वर में कहा, "मैं योग्य बनने की कोशिश में हूं मां। तुम तो देख ही रही हो कि मैं क्या था और क्या हो गया हूं।"

"मैं तुम्हारे भूत और भविष्य की बात नहीं कह रही हूं, राम। निशा तुम से आगे है। उसे आज के युग में पैदा नहीं होना चाहिए था। यह आज के सामाजिक परिवेश से बाहर की वस्तु है। मैं नहीं चाहती कि मेरे बेटे को समाज का अभिशाप भोगना पड़े। अभिशप्त दाम्पत्य जीवन भोगने की शक्ति तुम में नहीं है।"

"मैं ऐसे समाज की परवाह नहीं करता। मुझे उस समाज में रहना भी नहीं है।"

"जहां भी रहोगे, कोई न कोई समाज होगा ही, परिवार भी होंगे और तुम्हें उन समाज और परिवार की वेधक नजरें छेद-छेद डालेंगी। तब तुम्हारे

जीवन में क्रोध, प्रतिशोध, कुंठा और घुटन के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं बचेगा। मुझसे बहस मत करो। मैं तुम्हे यह विवाह करने की अनुमति नहीं दे सकती।"

राम चुपचाप कमरे से बाहर निकल आया। दरवाजे के पास ही निशा खड़ी थी। दोनों की आंखें मिली। निशा की आखों में कोई हर्ष-विषाद या आक्रोश का भाव नही था। किन्तु वहां जो कुछ था उसे न समझते हुए भी राम मर्माहत हो उठा। कौन-सा भाव था निशा की आखों में ? विजय का या पराजय का, अहम् का या हीनता का, क्रोध का या ग्लानि का, हिंसा का या प्रतिशोध का। कदाचित् ये तमाम भाव एकाकार होकर उसकी आखों में जल उठे थे। निशा के बन्द होठों पर ऐसी मुस्कराहट थी, जिसे देखकर राम सहम गया। निशा से बात करने की उसकी हिम्मत नही हुई और वह वहां से तेजी के साथ बाहर चला गया।

उसी रात निशा कहीं चली गई। कई रोज तक उसकी तलाश राजदेव करते रहे। लेकिन, निशा का नामोनिशान तक भी नहीं मिला। राम को व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए सुदूर सीमान्त प्रदेश में जाना था। उसने एक हफ्ते की छुट्टी लेकर दिल्ली का चप्पा-चप्पा छान मारा। रतनपुर भी वह गया, लेकिन निशा तो जैसे सीता की तरह पाताल में समा गई।

निशा की तलाश में राम उमेश से मिलने लालनारायण के यहां भी गया। उमेश से भेंट हुई। राम के मुंह से निशा के गायब हो जाने की बात सुनकर उमेश को आश्चर्य हुआ और दुख भी। उमेश दरअसल मन्दबुद्धि वाला व्यक्ति था। विचार के नाम पर वह एक ही विचार से परिचित था कि शारीरिक शक्ति से बड़ी उपलब्धि इस संसार में और कुछ नहीं है। इस बड़ी उपलब्धि को हासिल करने की धुन मे वह सब कुछ भूल जाने का आदी हो गया था।

दयावश उसने निशा की कई बार रक्षा की। गांव छोड़ते समय उसे महान् कष्ट पहुंचा था, क्योंकि वह नहीं जानता था कि शहर जाकर अपने शरीर का विकास किस प्रकार कर पायेगा। संजोग से लालनारायण ने उसे अपने यहां नियुक्त कर लिया। इस नियुक्ति पर उसने अपने भाग्य को सराहा। उसके बाद राजदेव के डर से ही वह निशा को लाने गया था। जब लालनारायण को निशा की बात मालूम हुई तो उसके मुंह में पानी भर गया। गांव में वह निशा को कई बार देख चुका था। लालनारायण की योजना के अनुसार ही उमेश निशा को ले गया था, जिसके बाद राम ने निशा की रक्षा की।

उमेश ने दु:खी स्वर में कहा, "मैं तो सच ही समझ बैठा था कि तुमने

निशा से विवाह कर लिया।...न जाने वह बेचारी कहां भटक रही होगी !"

"अच्छा उमेश भाई, सच बताइएगा, आप निशा को प्यार करते थे या नहीं ?" राम ने अचानक ही पूछ लिया था।

उमेश सहज ढंग से हंसते हुए बोला, "जरूर करता था। आज भी करता हूं। तभी तो उसके लिए इतना बड़ा झूठ बोला कि मैं उससे शादी कर चुका हूं। लेकिन सचमुच की शादी करने के लिए प्यार नहीं करता था। मैं तो जीवन भर ब्रह्मचारी रहूंगा।"

अन्त मे हार-थककर राम अपने काम पर चला गया। जाते समय उसने ललिता से कहा, "मां, जब तक मैं गलत रास्ते पर था, तब तक मुझे तुम्हारा प्यार मिलता रहा। अब मैं समझ गया कि वह तुम्हारा प्यार नहीं था। तुम मुझ पर तरस खाती, दया करती थी। आज जब मैं सही रास्ते पर हूं, तब तुममे तरस और दया की जगह अस्वीकृति और त्याग ने ले ली है। ईश्वर करे कर्तव्य की यह कठोरता तुम्हें शान्ति दे। मैं यह कहकर जाना चाहता हूं कि मेरे जीवन में अब कर्तव्य की कठोरता मात्र बच रही है। परिवार बसाने की अपेक्षा मुझसे नहीं करना। निशा के अतिरिक्त मेरे जीवन मे कोई दूसरी लड़की नही आ सकती।"

राजदेव को याद है, इस घटना के लगभग एक साल बाद वे निशा से *अशोक होटल की एक पार्टी मे मिले थे। प्रमोद उनके साथ था। वह दिल्ली* स्कूल आफ इकोनामिक्स में अन्तिम वर्ष का छात्र था। शुरू-शुरू में वह अपने बड़े भाई लालनारायण के साथ ही रहता था। लेकिन, वहां का माहौल उसे कतई पसन्द नहीं आया। इसलिए, वह अपने चाचा के साथ रहने चला आया था। निशा की वेशभूषा, बात-व्यवहार और आचरण देखकर राजदेव चकित रह गये। सिर पर कन्धे तक कटे हुए बाल, आधी पीठ नंगी और आधी पीठ पर रेशमी ब्लाउज, खुली हुई बाहे, कंठ के नीचे का काफी हिस्सा खुला हुआ, ब्लाउज के बाहर से झांकते हुए संगमरमर सदृश सुचिक्कन उरोजों की उन्मादक रेखाए, कमर के नीचे बेशकीमती रेशमी साड़ी इस कदर लिपटी हुई कि कटि से घुटनों तक के अंग-प्रत्यंग की रेखाएं वाचाल हो रही थी। उसके हाथ में शराब से भरा हुआ गिलास था। राजदेव को देखते ही निशा थोड़ी देर के लिए सहज हो उठी। उसके हाथ का गिलास कांप उठा। उसके चेहरे पर लाज की लाली दौड़ गई। लेकिन, तत्क्षण ही उसने अपने सहज भाव पर काबू पा लिया। वह विचित्र मुस्कराहट के साथ राजदेव की ओर बढ़ी और झुककर नमस्कार करती हुई बोली—

"आप यहा शराबियों की पार्टी में ?"

"हां, कभी-कभी ऐसी जगहों पर आने की मजबूरी भी झेलनी पड़ती है।"

"मैं तो सामान्यतया ऐसी ही पार्टियों में शामिल होती हूं।" —राजदेव कुछ जिज्ञासा करें, इसके पूर्व ही निशा ने कह दिया। निशा के स्वर में कृत्रिमता स्पष्ट हो उठी थी। इसके होंठ हंस रहे थे, लेकिन, उसकी आखों मे आंतरिक वेदना छलछला आई थी।

निशा की बात सुनकर राजदेव को आश्चर्य नहीं हुआ। आश्चर्य में तो जिज्ञासा और विस्मयात्मकता के चलते सुखानुभूति है। राजदेव तो निशा को देखते ही दुख और ग्लानि से भर उठे। उनकी ग्लानि निशा के प्रति नही थी, अपने प्रति थी। उन्हें अनुमान लगाते देर नही लगी कि निशा किस राह पर चल पड़ी है। बेशक, इसकी सीधी जिम्मेवारी अगर किसी पर थी, तो उन्हीं पर थी। जिस निशा को वे जानते थे, जिस निशा को लेकर वे गांव से दिल्ली आए थे, वह एक भोली-भाली, निश्छल, अपढ़ और अबोध निशा थी। वह बहुत सुन्दर थी। आज वे जिस निशा को देखकर पहचान भी नहीं पा रहे थे, उस निशा के जनक वस्तुतः वे स्वयं थे और उसकी जननी थीं ललिता। वे किनारे खड़े टुकुर-टुकुर देख रहे थे और उनकी बेटी बाढ़ के प्रचण्ड प्रवाह में बही जा रही थी। राजदेव चुपचाप निशा को अवसादपूर्ण दृष्टि से देखते रहे।

राजदेव की दृष्टि का अर्थ भांपकर निशा भीतर ही भीतर सहम उठी। वह नहीं चाहती थी कि उसकी वास्तविकता राजदेव पर प्रकट हो जाय। वह यह भी नही चाहती थी कि अब फिर से कोई तरस खाकर उसे उसी स्थिति में ले जाने का संयोग जुटा दे, जिस स्थिति ने उसे आत्महत्या की ओर उन्मुख कर दिया था। वह जान-समझ गई थी कि सबको सब कुछ नहीं मिलता, और वह जो कुछ प्राप्त कर पाई है, उसे स्वीकारने वाला समाज अंधा हो जायगा।

निशा को गुमसुम देखकर राजदेव स्वगत् भाषण के लहजे में बोले, "कुछ न कुछ तो होना ही था। लेकिन, इस होनहार की कल्पना नही कर पाया था।" राजदेव की बात कदाचित् निशा को लग गई, क्योंकि अचानक ही उसकी आंखों में सम्भ्रम की जगह सतर्कता आ गई और उसके होठों पर कटाक्षपूर्ण रेखाएं उभर आईं। वह इतना ही कह पाई—"मुझे तो कल्पना तक में भी जीने का हक हासिल नही हुआ।" राजदेव आंखें झुकाकर दूसरी ओर

/ खिसक गए। निशा ने जब राजदेव की ओर से आंखें हटाकर सामने देखा, तब वहा पर राजदेव की जगह प्रमोद खड़ा मुस्करा रहा था।

"मुझे पहचाना ?" प्रमोद ने निशा से पूछा।

निशा जान-बूझकर अनजान बनती हुई बोली, "ऐसा लगता है कि आपको कही देखा है। याद नही कि कहां देखा है।" दरअसल, निशा उस समय किसी एकांत में जाकर रोना चाहती थी। वह चाहती थी कि अपना सिर किसी चट्टान पर पटक-पटक कर उन रेखाओं को लहूलुहान कर दे, जिन रेखाओं मे उसका भूत, वर्तमान और भविष्य कैद है। लेकिन, प्रमोद को देखते ही उसका अतीत चुनौती बनकर सामने आ खड़ा हुआ। वह अपनी बात जारी रखने के विचार से फिर बोली, "जीवन मे पहचान कोई जरूरी चीज नही—वह भी अतीत की पहचान।"

"अभिनय अच्छी चीज है। इसके अभाव में आदमी महज आदमी रह जाता है और जिसे यह कला उपलब्ध हो गई, वह आदमी से अभिनेता, नेता, यहा तक कि अवतारी पुरुष बन जाता है। लेकिन मुखौटा लगा लेने से केवल वर्तमान छिप सकता है, अतीत नही। फिर, भविष्य का निर्माण तो अतीत की अनुभूति पर ही संभव है।"

"संसार के मंच पर जिन्दा रहने के लिए मुखौटा लगाना जरूरी है, प्रमोद जी। और जो केवल जिन्दा रहने के लिए जिन्दा है, उसकी दृष्टि में भविष्य का अर्थ है मृत्यु। वह भविष्य से भयाक्रांत होकर वर्तमान को ही उपलब्धि मानता है।"

"जिन्दा रहने के लिए मंच से उतरना भी पड़ता है और मंच के नीचे मुखौटा अनावश्यक हो जाता है। खैर, छोड़िए इन पहेलियों को। आइए, कहीं बाहर चलें।"

प्रमोद की बेतकल्लुफी देखकर निशा की दिलचस्पी बढ़ गई। राजदेव से मिलने पर उसके मन पर जो गहन अवसाद छा गया था, वह सहज ही दूर हो गया। फिर भी वह अतीत से सम्बद्ध हर भाव और वस्तु से कतराना चाहती थी। बनावटी गरिमायुक्त स्वर में बोली, "मैं अपने 'बास' का इंतज़ार कर रही हूं। इसलिए, बाहर जाने का सवाल ही नहीं उठता। आप भी तो बाबू जी के साथ आए हैं ?"

निशा के मुंह से राजदेव के लिए बाबू जी का संबोधन सुनकर प्रमोद मन ही मन बहुत खुश हुआ। प्रमोद निश्छल, निरहंकार और निर्भीक युवक था।

निशा के बारे में उसने बहुत कुछ सुन रखा था। निशा उसे आरम्भ से ही आकृष्ट करती आई थी। प्रमोद में एक खूबी यह भी थी कि वह सामाजिकता के नाम पर केवल समझदारी को स्वीकार कर सका था। सामाजिक निषेध और वर्जन की अस्वीकृति उसके स्वभाव में थी। वह निशा की बाईं कलाई पकड़कर हाल के एक कोने की ओर ले जाते हुए बोला, "बाहर न सही, वहां उस किनारे वाले सोफे पर चलकर बैठें।···तुम्हारे ये 'बास' कौन हैं ?"

"फिलहाल तो आप 'बास' की तरह व्यवहार कर रहे हैं। जब मैं गांव में थी, तब तक तो आपने···।"

निशा वाक्य पूरा भी नहीं कर पाई थी कि प्रमोद ने बात काटते हुए कहा, "ऐसा ही व्यवहार करना चाहता था। इच्छा होती थी कि तुम्हारे पागल पशु-स्वरूप पति शंकर को पागलखाने भेज दूं, तुम्हारे जेठ अमरनाथ को गोली मार दूं और तुम्हें इसी प्रकार खींचते हुए एकांत मे ले जाऊं···फिर···फिर कुछ नहीं; बस, केवल तुम्हारे कंधों पर हाथ रखकर बैठा रहूं या तुम्हें देखता रहूं या तुम्हें सुनता रहूं। लेकिन, तुम मजबूर थीं। तुम्हारी वह मजबूरी आज मिट चुकी है।···तुमने अपने 'बास' का नाम नहीं बतलाया !"

तब तक दोनों सोफे के पास जा पहुंचे थे। प्रमोद की भावपूर्ण बातें सुन कर निशा सशंकित हो गई। उसने गौर से प्रमोद को देखा और कुछ देर तक देखती ही रही। निशा को लगा कि प्रमोद सच कह रहा है। यह सच निशा के हृदय में शूल बनकर चुभ गया। यह सच शराब की घूंट की तरह तीखा था। इसके असर से वह कहीं न कहीं कुलषित भी हो उठी। किन्तु, उसे अपने भाग्य पर रोना आ गया। उमेश, राम, प्रमोद···एक-एक कर उसके अन्तरंग को गन्ध-युक्त करते रहे। भाग्य के खेल से रूप-रस की अनुभूति उसे जीवन भर छलती रही। ईश्वर भूल गया कि वह मानवी भी है। निशा ने सोफा पर बैठते ही अपने सिर को हलका-सा झटका दिया, जैसे वह विचारों के आतंक से मुक्त होना चाहती हो, और भारी स्वर में कहा, "यह एक लम्बी कहानी है। संक्षेप मे समझ लीजिए, ये करोड़पति सेठ हैं, आप लोगों की नजर में निन्दनीय शोषक, किन्तु मुझे नई जिन्दगी देने वाले। पुरानी निशा उसी दिन मर गई, जिस दिन वह बाबू जी के घर से निकलकर पटेलरोड पर तेजी से आती हुई एक गाड़ी के नीचे जा गिरी थी।"

"तो तुमने आत्महत्या करने की कोशिश की ?"

"और क्या करती ? मेरे जीवन में कौन-सा सहारा रह गया था ? हर

आदमी के होठों पर मेरे लिए प्यार और सान्त्वना के शब्द थे, लेकिन, किसी ने हाथ बढ़ाकर मुझे थाम लेने का कष्ट नहीं उठाया। आपके इस देश में, जहां एक नारी प्रधानमंत्री हो सकती है, सामान्य प्रधानमंत्री नहीं, ऐतिहासिक दृष्टि से सफल और उल्लेखनीय, वहां आज भी अकेली नारी असुरक्षित है, आतंकित है। जब कभी संरक्षा का सवाल उठता है, तो बहुत सारी परम्पराएं, मर्यादाएं, रस्म-रिवाज और रूढ़ियां आड़े आ जाती हैं। मेरे साथ यही तो हुआ।"

"आज तुम्हें संरक्षा प्राप्त है?"—प्रमोद ने थोड़ा झुककर निशा की आंखों में झांकते हुए पूछा। निशा सोफा की पीठिका का सहारा लेकर आंखें बन्द किए अधलेटी-सी बैठी रही। प्रमोद की इच्छा हुई कि वह उन बन्द पलकों का—किंचित् खुले होठों का—अपने होठों से हलके-हलके स्पर्श कर ले। वह इसी व्यामोह में पड़ा था कि निशा ने आंखें खोल दीं और दूसरी ओर देखते हुए कहा, "मैं नहीं जानती कि किस हद तक सुरक्षित हो पाई हूं। कभी लगता है, कमजोर डोरी के सहारे एक गहरी, चौड़ी खाई पार कर रही हूं। यह भी नहीं मालूम कि उस पार क्या है। और कभी स्पष्ट दीखने लगता है कि डोरी टूटेगी ही टूटेगी, या नहीं तो संतुलन बिगड़ जायगा और तब हजारों फुट नीचे पहुंचने के पूर्व ही मेरी इहलीला समाप्त हो जायगी। जिसे आपने अभिनय कहा, वह संतुलन बनाए रखने की मुद्रा भर है। इस बीच मुझे पढ़ने का अवसर मिला। खाने-पीने रहने-सहने की असीम सुविधा मिली। लेकिन, यह सब ऐसा ही है, जैसे गर्मी में रेशम की रजाई, ठंड में बर्फीली चोटी का आकर्षण, रेगिस्तान में पानी के बिना स्वादिष्ट भोजन, बच्चों से खाली घर में ढेर सारे खूबसूरत खिलौने। यह सब देखती हूं, भोगती हूं या यों समझिए कि देखना और भोगना पड़ता है। तब नतीजा यही निकलता है कि प्रारब्ध में मरना नहीं है, यही सब भोगने के लिए जिन्दा रहना है—निरुद्देश्य।"

निशा की बातें सुनकर प्रमोद का सहज चांचल्य गायब हो गया। वह कुछ बोल नहीं सका। उसे मालूम था कि निशा के लिए सान्त्वना के शब्द बेमानी हैं। वह इतना ही बोल सका, "मैं साल भर से दिल्ली में ही हूं। तुम्हें ढूंढ़ता भी रहा। यदि तुम्हें कोई एतराज न हो, तो मैं तुमसे यदा-कदा मिलना चाहूंगा। तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो।"

सातें

उस दिन राजदेव एक पल के लिए भी पार्टी मे ठहर नही पाए थे। उनका मुख झुंझलाहट से भर गया था। रह-रह कर उनके सिर के बालों के नीचे पसीना छलछला उठता था। वे किसी को पहचान भी नहीं पा रहे थे। उन्हे लगने लगा, जैसे अनुस्मृति की तीव्रता के चलते वे आंखों की शक्ति खो बैठे हों। उन्होने प्रमोद को ढूढने के लिए चारों तरफ नजर दौड़ाई, लेकिन वे प्रमोद को निशा के साथ बैठे देख नही पाए और अन्त में घबड़ाकर हाल से बाहर निकल गए।

रात देर गए तक जब उन्हें नीद नहीं आई और वे बार-बार बिस्तर पर करवट बदलते रहे, तब ललिता ने ही पूछा था, "तबीयत ठीक नहीं है क्या ?"

राजदेव समझ गए कि ललिता से उनकी बेचैनी छिपी नहीं रह सकी। वैसे भी ललिता राजदेव की मन:स्थिति पढ लेने की अभ्यस्त हो गई थी। यह बात दूसरी थी कि वह उनकी चिन्तन-प्रक्रिया में अचानक ही कभी दखल नही देती थी। कभी-कभी तो उसे लगता था कि शायद राजदेव उसके प्रति विरक्ति और ऊब के कारण ही खामोश हो जाया करते थे। राजदेव के प्रति ललिता का यह अन्याय था, जिस अनुभूति को राजदेव अपने कण्ठ से बाहर नही आने देते थे। निदान गाठ पर गांठ पड़ती चली गई थी। ललिता का प्रश्न सुनकर वे उठकर बैठ गए और सिर झुकाए-झुकाए ही बोले, "मेरे भाग्य में भी क्या-क्या देखना बदा था !" ललिता चुपचाप सुनती रही। क्षण भर की चुप्पी के बाद राजदेव ने अपनी बात जारी रखी, "आज निशा को पार्टी में देखा। अजीब वेशभूषा में थी—हाथ में शराब का गिलास लिए।" यह कहकर राजदेव ने ललिता की ओर देखा। न जाने क्यों, ललिता ने आंखें झुका लीं। वह कुछ बोली नहीं, कुछ बोलने को उसके पास था भी नहीं। राजदेव ने महसूस किया कि इस समाचार से ललिता कहीं न कही से टूटने जैसी हो गई है। यह दुखदाई अनुभूति भी राजदेव को अच्छी लगी।

उस घटना के बाद प्रमोद और निशा की मुलाकात बार-बार होती रही। निशा एक करोड़पति सेठ की गाड़ी के नीचे मरने के लिए कूद पड़ी

थी। संयोग से उसके शरीर के पास गाड़ी का चक्का पहुंचते-पहुंचते रुक गया था। निशा ने पूरे वेग से छलांग लगाई थी। इसलिए गिरते ही बेहोश हो गई। उसके सिर में सड़क पर गिरने से जोरों की चोट लगी थी। गाड़ी में अस्सी वर्षीय धनपति कपाड़िया बैठा हुआ था।

धनपति कपाड़िया को तरह-तरह की बीवियां रखने का शौक था। उसका विश्वास था कि किसी न किसी पत्नी की कोख से सर्वगुण-सम्पन्न लड़का अवश्य होगा। इसी विश्वास से वह आठ शादियां कर चुका था। मोटर रुकते ही धनपति भी सड़क पर घिसता हुआ उतर आया। निशा के सिर से रक्त की धारा बह रही थी। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गए थे। घुटनों से ऊपर तक के अंग निर्वसन थे। धनपति ने स्वयं उसके वस्त्र ठीक कर दिए और उसे उठवाकर अस्पताल में दाखिल करा दिया।

एक हफ्ते बाद अस्पताल से छुट्टी पाते ही, जब निशा चलने को तैयार हुई, तब सेठ धनपति उसे अपनी कोठी में ले गया और बोला, "यह कोठी तुम्हारी ही है।"

"मेरी !"—निशा ने अविश्वास के स्वर में पूछा।

सेठ उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोला, "मेरे कारण तुम्हें कष्ट हुआ। बल्कि तुम्हारा पुराना स्वरूप मर चुका। अब तुम मेरी नवीं पत्नी हुई। मैं आठ शादियां पहले ही कर चुका हूं। हरेक को अलग-अलग कोठी दे रखी है। यह कोठी तुम्हारी हुई।"— यह कहकर सेठ ने जेब से कागज निकालकर देते हुए फिर कहा, "यह रहा कोठी का अधिकार-पत्र। इसके अलावा तुम्हें छह हजार रुपये माहवार और सौ रुपये दैनिक भत्ता मिला करेगा। सब कुछ इस कागज में लिखा है।"

"मैं आपकी पत्नी तो हूं नहीं, और हो भी नहीं सकती।"

"वह तो मैं जानता हूं। मैं यह भी जानता हूं कि तुम जीवन से तंग आ चुकी हो। लेकिन, यह जीवन, यहां तक कि तुम्हारा शरीर भी तुम्हारा नहीं है। इसलिए, इसे नष्ट करने का अधिकार भी तुम्हें नहीं है।"

"क्या आप से शादी करके यह जीवन और शरीर नष्ट होने से बच जाएगा ?"

"हां, तुम्हें सुरक्षा मिल जाएगी, जिससे भविष्य का मार्ग अवरुद्ध नहीं होगा। और मेरे साथ यज्ञवेदी पर बैठकर शादी करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तुमसे विधिवत् विवाह कर भी नहीं सकता हूं। इसलिए, तुम्हें मैं अपनी

सेक्रेटरी के रूप में रखूंगा।"—यह कहकर सेठ ने निशा को बाहों में भरने की कोशिश की। निशा ने किंचित् प्रतिरोध किया। इतने से ही सेठ बुरी तरह हांफने लगा। अन्त में वह एक अजीब हंसी हंसता हुआ सोफे पर बैठ गया।

निशा को सेठ की वह मुद्रा देखकर तरस आ गया। वह स्वयं उसके पास बैठ गई। सेठ उसकी ओर देखता हुआ बोला, "मैं जानता हूं कि तुम जवान हो, कमसिन हो और मैं दोनों पांव कब्र मे लटका चुका हूं। लेकिन, समाज के सामने मैं कभी हार नही मानूंगा। लोग देखें कि मेरी बाहो मे कैसी हसीन और कमसिन लड़कियां मचलती फिरती है। इसलिए, तुम्हे मेरे साथ पार्टियों में चलना होगा, खूब बन-संवर कर रहना होगा। वैसे तुम अपनी जिन्दगी जीने के लिए स्वतंत्र हो। बस, केवल मेरी प्रतिष्ठा का खयाल रखना।" सेठ की बातें सुनकर निशा को क्रोध नही आया। झूठी शान और प्रतिष्ठा का मुखौटा देखकर वह घृणा से भर उठी। लेकिन, उसने अपना भाव प्रकट नही होने दिया।

तब से निशा सेठों, हाकिम-हुक्कामों और ऐयाशों की पार्टियों और महफिलों में धडल्ले से शामिल होने लगी। घर पर दो ट्यूटर रखकर उसने अंग्रेजी-हिन्दी के साथ-साथ वेश-विन्यास आदि की शिक्षा भी ले ली। उसे जीवन का नया स्वाद मिला। वह इस प्रकार का अभिनय करने में पारंगत हो गई। हर मिलने वाला उसे अपनी ही प्रेमिका मान बैठता था। सचाई यह थी कि हर मिलने वाले से वह बडी खूबसूरती के साथ कतराकर दूर हो जाती थी। उस क्रम मे तीन-चार बार बेशक उसके पांव फिसल भी गए। हर फिसलन के बाद एकान्त में बैठकर वह खूब रोई थी। रोने-धोने के बाद उसके मन में सवाल उठा था—"वह क्यों चिन्ता करे! अमरबेलि कहीं भी फैल सकती है।" और हर फिसलन के बाद वह भीतर से सख्त होती गई और ऊपर से अत्यधिक बाचाल और नशीली। इस तरह निशा का एक अद्भुत रूप निखर आया, जो देखने वाले की नजरों में रंगीनी, चांदनी और मादकता बनकर छा गया।

प्रमोद नहीं जानता था कि वह निशा से क्या चाहता है। प्रमोद को निशा की सारी व्यथा-कथा मालूम हो चुकी थी। निशा जानती थी कि वह जो कुछ चाहती है, प्रमोद उसे दे नही पाएगा। फिर भी, दोनो एक-दूसरे के निकट आते गए। दोनों एक-दूसरे की अनुपस्थिति में कमी महसूस करने लगे। प्रतीक्षा खलने लगी। निशा की नजरों मे प्रमोद एक निर्भीक, निश्छल और संकल्पशील युवक था। किन्तु, निशा जानती थी कि वह राम का स्थान नहीं ले सकता

था। एक दिन उसने प्रमोद से कह दिया, "तुम्हारा रोज-रोज मेरे पास आना क्या उचित है ?"

"क्यों, क्या मैं बुरा आदमी हूं ?"

"नहीं, तुम बहुत अच्छे आदमी हो। भद्रकुल के भविष्य हो। बुरी तो मैं हूं। मेरे पास बार-बार आने से तुम्हारा भविष्य बिगड़ जायगा।"

"आजादी पाने के लिए हजारों भारतीय छात्रों ने अपना भविष्य नष्ट कर दिया। एवरेस्ट विजय के क्रम में कितने पर्वतारोहियों को प्राण गंवाने पड़े। निशा, जिन्दगी भविष्य में नहीं बसती, किसी आदर्श या इच्छा या मंजिल पाने की राह में आने वाली आपदाओं को आनन्दपूर्वक झेलने का नाम है जिन्दगी। मैं उसी जिन्दगी को पाने के लिए तुम्हारे पास आता हूं। तुम्हारे बिना मेरे जीवन में कोई अर्थ नहीं रह जायगा। एम० ए० की परीक्षा देने के बाद मुझे निश्चय ही एक अच्छी नौकरी मिल जायगी। मैं अपनी कक्षा में प्रथम आता हूं, समझी? नौकरी मिलते ही हम दोनों विवाह कर लेंगे।"—यह कहकर प्रमोद ने निशा को अपनी बांहों में भर लिया। निशा ने कोई प्रतिरोध नहीं किया। वह प्रमोद के वक्ष पर निर्जीव, स्पन्दनहीनबनी काफी देर तक पड़ी रही। उसकी इच्छा हुई कि वह खूब रोए और अपने आंसुओं में प्रमोद को डुबो दे। लेकिन, निशा रोई नहीं। गुमसुम बनी रही।

कुछ देर बाद इत्मीनान से वह प्रमोद की बांहों से अलग होती हुई बोली, "ऐसा नहीं हो पाएगा प्रमोद। मैं तुमसे शादी नहीं कर पाऊंगी।"

"क्यों नहीं कर पाओगी ?"

"मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं। मुझे यह भी पता नहीं है कि मैं तुम्हें प्यार करती भी हूं या नहीं।"

"क्या मैं तुम्हें अच्छा नहीं लगता हूं ?"

"कहा तो, बहुत अच्छे लगते हो। इतने अच्छे कि तुम्हारा स्पर्श करते भी मुझे डर लगता है। इसीलिए मैं तुम्हें मोहपाश में बांधना नहीं चाहती। मैं अभिशप्त नारी हूं, दूषित हूं।"

"यह तुम्हारा वहम है। शंकर भयंकर पागलपन से ग्रस्त था। मृत्यु ने उसे कष्ट-मुक्त कर दिया। राम एक पथभ्रष्ट प्रतिभा था। तुम्हारे प्रेम ने उसे कर्त्तव्य-बोध दे दिया। तुम अभिशप्त नहीं हो। दूषित भी नहीं हो। दूषित वे हैं, जिन्होंने तुम्हें गंदला करना चाहा। नालियों के गिरने से गंगा अपवित्र नहीं हो जाती।"

"लेकिन, प्रमोद, एक नारी के नाते मैंने अपना समस्त प्रेम राम को अर्पित कर दिया। अपनी स्वामिनी मैं स्वयं नही हूं। राम को मैं भूल नही पाती, भूल नही सकती। वह मेरे कारण ही बनवासी बना फिरता है। न जाने, आज कहां भटक रहा होगा। मुझसे विवाह करने के लिए ही उसने पढ़ाई छोड़कर नौकरी कर ली।"

प्रमोद के पास निशा के इस तर्क का कोई उत्तर नही होता। वह खामोश हो जाया करता था। फिर दूसरे-तीसरे दिन इसी तरह के कथोपकथन आरम्भ हो जाते। नतीजा कुछ नहीं निकल पाता था।

इसी प्रकार समय बीतता रहा। प्रमोद का परीक्षाफल निकला ही था कि देश की पश्चिमी सीमा पर युद्ध के बादल मंडराने लगे। कच्छ के रण में पाकिस्तानी सेना ने अचानक ही हमला कर दिया था। देश-प्रेम का तकाजा हुआ और प्रमोद सेना की एमरजेन्सी सेवा में भर्ती हो गया। सैनिक प्रशिक्षण पूरा ही हुआ था कि ५ सितम्बर, १९६५ को पाकिस्तान ने पश्चिमी सीमा के कई मोर्चों पर हल्ला बोल दिया। सोलह रोज के भयंकर युद्ध में खेमकरन, बर्की, डोगराई, डेराबाबा नानक, और सियालकोट के पास कुन्दनपुर के मोर्चों पर भारतीय फौज की भारी जीत हुई। उस जीत के लिए बहुत महंगी कीमत अदा करनी पड़ी। भारत के हजारों सपूत खेत रहे, जिनमें प्रमोद भी एक था। प्रमोद को मरणोपरान्त अशोकचक्र मिला। लेकिन, उसे निशा नही मिल सकी।

निशा के जीवन मे यह सबसे बड़ा भूचाल सिद्ध हुआ। वह निश्चय ही प्रमोद से शादी नही करना चाहती थी, क्योकि वह सचमुच ही प्रमोद को बहुत चाहती थी। प्रमोद की शहादत ने उसके जीवन को एक नया मोड़ दे दिया। अब वह पार्टियों में जाने से कतराने लगी, रेस्तराओ से दूर भागती रही और जब उसका 'बास' सेठ धनपति उसकी कोठी मे पदार्पण करता तो उसे भली प्रकार खिला-पिलाकर बेहोशी की हालत में मोटर पर चढ़ाकर उसके घर भेज देती। सेठ को औरत रखने का पाशविक नशा था। उस नशे को सार्थक करने के लिए सेठ धनपति शराब पीता ताकि आयु का अहसास न रहे। नतीजा यह होता कि वह शराब पीता-पीता अपना आपा ही खो बैठता। इसी क्रम मे एक दिन सेठ धनपति घर जाते समय मोटर मे सोया का सोया ही रह गया। इस घटना के चलते एक हंगामा उठ खड़ा हुआ। सेठ के रिश्तेदारों

और शुभ-चिन्तकों ने निशा पर यह आरोप लगाया कि उसने धन के लोभ में सेठ धनपति कपाड़िया को जहर दे दिया है।

यह आरोप सिद्ध नहीं किया जा सका। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट में ऐसा कोई सबूत नहीं मिला। समाज की नजरों में निशा एक बार फिर विधवा करार दे दी गई। समाज की इस एकांगी मान्यता पर निशा मुस्करा उठी। उसने सोचा, 'चलो अच्छा हुआ—हंसने का एक बहाना तो मिल गया। और पार्टियों में जाने की मजबूरी से मुक्ति।...'

राजदेव जीवन के इन विचित्र अंधकारमय मोड़ों पर घटित अप्रत्याशित घटनाओं की याद करके सोचते रहे, हिसाब जोड़ते रहे कि यहां क्या मिलता है और कितना कुछ गंवाना पड़ता है। मालूम नहीं, उन्होंने राम को पाकर खो दिया या खोकर पाने की आशा में जीवित हैं। निशा को क्या मिला ?...राम भी तो इन प्रदेशों में आकर बहुत कुछ खो बैठा !...राम की भेंट एक नागा लड़की से हुई थी...अजीब नाम था, जो याद नहीं रहता...अंग्रेज़ी के किसी शब्द जैसा था !...

टेमज़न की लड़की नोरसिंग राजदेव के सिरहाने बैठी बड़े गौर से राजदेव के चेहरे पर आते-जाते भावों को पढ़ रही थी। राजदेव कभी आंखें बन्द कर लेते, तो कभी छत की ओर एकटक देखते रह जाते। कभी उनके चेहरे पर हंसी थिरक उठती तो कभी उनके दांत और दोनों होंठ भिंच जाते और आखें बन्द हो जातीं, भवें सिकुड़कर आपस में मिल जातीं। ऐसा लगता कि जैसे विषाद के बादलों ने उनके चेहरे को जकड़ लिया हो, जैसे उनके भीतर की तमाम नसों और शिराओं को पकड़कर कोई खींच रहा हो।

नोरसिंग जब पूछती, "क्या बहुत दर्द है ?"

राजदेव तुरन्त अपनी आंखें गोल देते। उनका मुख-मण्डल सहज हो जाता और वे मुस्कराकर कहते, "नहीं तो। मैं बिल्कुल ठीक हूं। घुटनों में हलका दर्द तो कुछ दिन चलेगा ही।"

"क्या घर की याद आ रही है ?" नोरसिंग ने सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

राजदेव स्नेहपूर्ण आंखों से नोरसिंग के रक्तिम होंठों पर थिरकती हुई निश्छल मुस्कराहट देख-देखकर मुग्ध होते रहे। लाल होंठों के नीचे धवल दंत-पंक्ति ऐसी लग रही थी, मानो सूर्यास्त के समय पश्चिमी क्षितिज पर छाए

किन्तु मनुष्य कितना ओछा और नराधम है ! और वह उपलब्ध शक्ति का उपयोग सर्वनाश के लिए किया करता है। वह अमृत को भी जहर में बदल देता है।

राजदेव की दायी हथेली नोरसिंग की ठुड्डी पर चली गई। उन्होंने स्नेह-सिक्त स्वर मे कहा, "तुम बहुत भोली हो। मनुष्य सहज और सुन्दर रूप मे प्राणवान् होकर पैदा हुआ। जो प्राणवान् है, वही वेगमान और गतिशील भी है। उसके वेग और गति की प्रखरता को झेलने की शक्ति समाज में नही है, क्योकि वह जड़ है। कम-से-कम देश और स्थान की परिधि मे सबको जड़ रहना ही पडता है। कदाचित् इसीलिए उसने बहुत-से घेरे डाल दिए, ठोकरें बना दी, तटबन्ध खड़े कर दिए। ये तटबन्ध और ठोकरें ही मेरी बैसाखी हो सकती है, तुम नही। यदि तुम बैसाखी बनना ही चाहोगी तो तुम्हे तटबन्ध और ठोकरों पर पड़ी हुई चट्टानों का स्वरूप लेना पड़ेगा।"

'किसे क्या लेना पड़ेगा ?"—टेमजन ने कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा।

अपने पिता को देखकर नोरसिंग संभल गयी। वह नही चाहती थी कि दिल्ली जाने की उसकी इच्छा का आभास तक टेमजन को मिले। यह ऐसा विषय था, जिसकी याद मात्र से टेमजन व्यथित हो उठते थे। इसलिए, नोरसिंग ने विषय बदलने के विचार से कहा, "अभी तक ये दिमागी तौर पर अच्छे नही हुए हैं। जैसे बेहोशी मे अजीब-अजीब बातें बोला करते थे, वैसे ही आज भी बोल रहे थे। लेकिन, मैं कुछ भी समझ नही पायी, क्योकि मुंह से आवाज़ निकाले बगैर ये अपने होंठो मे ही बुदबुदाते रहते है।"

नोरसिंग की बातें सुनकर राजदेव हंसने लगे और हंसते-हंसते ही बोले, "आपकी बेटी मेरी बैसाखी बनकर दिल्ली चलना चाहती है। मैं इससे कह रहा था कि तुम बहुत भोली हो। मेरी बैसाखी तो कोई लोहा या लकडी का टुकड़ा ही हो सकता है।"

"ठीक तो कहती है। दस-पन्द्रह रोज़ बाद शायद मैं भी दिल्ली चलूं। हमारे नेता और नागालैण्ड के राज्यपाल के बीच समझौता वार्ता पूरी हो चुकी है। अंतिम निर्णय होने से पूर्व शायद हम लोगो को दिल्ली जाना पड़े। वैसे दिल्ली मे मुझे कुछ अपना काम भी है।" अन्तिम वाक्य कहकर टेमजन ने अपनी बेटी की ओर वात्सल्यपूर्ण नज़रो से देखा।

नोरसिंग सिर झुकाये बैठी रही। राजदेव को यह बात कुछ अजीब लगी, लेकिन उन्होंने कोई जिज्ञासा प्रकट नहीं की। जिस भाव-भूमि पर पहुंचकर

उन्होंने जो बात कही भी, उसका आशय टेमज़न या उनकी बेटी को वे समझा नहीं पाये। दरअसल, दोनों पक्ष जैसे किसी नदी के दो किनारों पर आमने-सामने खड़े थे, अपने-अपने अतीत की ओर पीठ किये। सत्य का आभास दोनों को मिल रहा था, फिर भी दोनों ही सत्य से कोसों दूर थे। राजदेव की इच्छा हुई कि नोरसिंग उनकी व्यथा-कथा सुन ले। न जाने क्यों, उन्होंने महसूस किया कि नागा-तरुणी में ही वह सब कुछ सुनने का माद्दा है।

कुछ देर तक राजदेव नोरसिंग को अपलक निहारते रहे और फिर उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। राजदेव को कष्ट न हो, इसलिए नोरसिंग उनकी ओर झुक गयी। नोरसिंग अपनी कुहनी राजदेव की खाट पर टिका कर झुकी बैठी थी, जिसके कारण उसकी गर्म सांस राजदेव के चेहरे को स्पंदित कर रही थी।

टेमज़न ने हंसते हुए कहा, "मेरी बेटी पागल हो गई है। जब से आप हमारे घर आये हैं, यह बाहर निकलने का नाम ही नहीं लेती। आपकी सेवा सुश्रूषा में ही लगी रहती है। रसोई में आपके लिए जो भी पथ्य बनता है, अपनी मां को उसका स्पर्श भी नहीं करने देती।"

राजदेव नोरसिंग की ओर देखते हुए बोले, "पूर्व जन्म में यह मेरी मां थी। इसे देखकर नन्दिनी, निवेदिता ही नहीं ललिता की याद भी तरोताजा हो उठती है। इसकी खिलखिलाहट ठीक ललिता की तरह है।" टेमज़न वहां रुक नहीं सके। विषादपूर्ण हंसी हंसते हुए बाहर चले गये।

राजदेव अचानक ही ऐसी बात बोल गये, जिसका अर्थ ढूंढने पर उन्हें स्वयं रोमांच हो आया। उन्होंने महसूस किया कि नोरसिंग का अत्यधिक सान्निध्य, उसके होठों की मुस्कराहट, दन्तपंक्ति की चमक उनमें विचित्र रोमांच उत्पन्न कर देती है। इतने निकट से, वह भी एकान्त में चौबीस-पच्चीस साल की खूबसूरत तरुणी को देखने और उसे स्पर्श करने का अवसर राजदेव को दशाब्दियों बाद मिला था। राजदेव नोरसिंग के मुखमण्डल और उसके सुगढ़, सुकोमल देह-यष्टि की प्रत्येक प्राणवान रेखा को देख पा रहे थे। उन्हें लगा कि यही सृष्टि है, यही स्थिति है और यही प्रलय भी। आद्याशक्ति का समग्र स्वरूप भी तो यही है। प्रत्येक नारी में यही त्रिगुणात्मक शक्ति विद्यमान है। जिसकी जैसी भावना हो वह वैसा ही स्वरूप स्वीकृत करे या अस्वीकृत करे। स्वीकृति और अस्वीकृति के संतुलित चयन में ही मनुष्य का विवेक परिलक्षित

होता है। राजदेव को अचानक अपने पुत्र राम का हृदय द्रावक, करुण संस्मरण याद हो आया।···

राम लगभग पाच साल बाद घर लौटा था। पांच साल की अवधि में वह सुदूर पश्चिम में कच्छ के रण से लेकर उत्तर में 'हाट स्प्रिंग' और उत्तर-पूर्व के बर्फीले प्रदेशों और माकोकचंग और त्वेनसांग के दुरूह पर्वतीय वन्य प्रदेशों को यात्रा कर चुका था।

त्वेनसांग के घनघोर जंगली इलाके में स्थिति नागा परिवार में राम को लगातार लगभग छह महीने तक रहना पड़ा था। वह वहां गया तो था पन्द्रह-बीस रोज के लिए, लेकिन, रास्ते में ही उसे भयंकर पेचिश हो गई। मजबूर होकर राम को एक प्रौढ नागा नायक के घर में शरण लेनी पडी थी। नागा नायक का नाम राजदेव को याद नहीं रहा। उसकी बेटी ने ही राम के प्राणों की रक्षा की थी, ठीक वैसे ही जैसे बेनी और नोरसिंग ने राजदेव की रक्षा की है। लड़की का नाम शायद आवा था या ओवा ····ठीक से याद नही रहा राजदेव को। राजदेव ने दिमाग पर ज़ोर दिया, बारम्बार ज़ोर दिया तो लगा कि लड़की का नाम ओवेन था। ओवेन राम की सेवा करते-करते अपना दिल भी राम को दे बैठी थी।

राम की पेचिश अभी ठीक भी नही हुई थी कि उसे मलेरिया जैसा ज्वर हो आया। तेजी के साथ अत्यधिक बुखार चढ़ जाता। बुखार चढने से पहले शरीर में ज़ोरों की कंपकंपी उठने लगती और यह क्रम घंटो तक चलता रहता। बीहड़ वन्य-प्रदेशो मे डाक्टर कहां से आता! जंगली जड़ी-बूटी का इलाज चलता रहा। ओवेन दिन-रात परिचर्या मे लगी रहती थी। ओवेन को राम से आसक्ति हो गई थी।

राम को सभी नागा जातियों—आओ, लोथा, सेमा, अंगामी, रेंगमा, आदि के रहन-सहन, दिनचर्या आदि का अध्ययन करना था। इसीलिए, वह कभी पादरी के रूप मे, तो कभी रामकृष्ण मिशन के प्रतिनिधि के रूप मे लम्बी यात्रा पर निकला करता था।

इस बार राम को आदेश मिला था कि वह कोहिमा से चलकर अकेले ही त्वेनसांग जिले में जाये और पैदल जाये। वहां बीस-पच्चीस रोज़ रहकर उस इलाके के नागाओ की गतिविधियों का अध्ययन इस खूबी के साथ करे कि नागाओं को उसपर कोई शक न हो। इस यात्रा में उसे वनस्पति शास्त्र के

अध्येता के रूप मे त्वेन्सांग जिले की यात्रा करनी थी। कोहिमा से चलने के एक-दो रोज बाद ही उसकी तबीयत ढीली होने लगी थी। लेकिन उसने यह कल्पना नहीं की थी कि इस बीहड़ इलाके में प्रवेश करते ही वह प्राणघाती रोग ले बैठेगा। पांचवां दिन बीतते-बीतते वह बिलकुल पस्त हो गया। पास में हलकी-सी अटैची थी जो उसके लिए पहाड़ बन गई। फिर भी वह गाव पर गांव पार करता हुआ, पहाड़ी रास्तो पर चढता-उतरता हुआ, ओवेन के गांव के बाहर जा पहुचा था। उसके शरीर मे थोड़ी-सी भी ताकत नहीं रह गई थी। चलते-चलते वह कई बार चक्कर खाकर धराशाई हो चुका था। होश आने पर वह उठता फिर सात-आठ कदम चलने के बाद या तो बैठ जाता या मूर्छित होकर जहां-तहा पड़ जाता। अन्त मे स्थिति इस प्रकार बिगड़ती गई कि उसकी आंखो के आगे अंधेरा छा गया। गाव के बाहर साल और ओक के भरे जंगल मे वह चक्कर खाकर गिर पड़ा। जब उसे होश आया, तो उसने देखा कि एक षोडषी नागा तरुणी अपनी जाघ पर उसका सिर रखे उसकी हथेलियों को जल्दी-जल्दी मल रही थी। राम ने उठने की कोशिश की तो उस नागा युवती ने उसके सीने पर अपनी मुलायम हथेली रखकर उठने से रोक दिया। राम आंखें बन्द किए हुए कुछ देर तक लेटा रहा। उस लड़की ने राम के दोनों तलवों की भी मालिश की। लगभग आध घण्टे बाद राम खड़ा होने लायक हो गया। तरुणी ने राम को कन्धे का सहारा देकर अपने घर तक ले चलने के लिए उसकी दायीं बांह अपने कंधे पर रख ली। बायें हाथ से राम के शरीर को सहारा दिया और दायें हाथ मे राम की अटैची ले ली। तरुणी के घर तक पहुंचते-पहुचते राम की हालत फिर बिगड़ गई थी। उस दिन राम ने जो बिस्तर पकड़ा सो तीसरे महीने जाकर ही उठने-बैठने लायक हो सका।

एक दिन राम ने ओवेन से पूछा, "तुम में इतना सेवा-भाव कहां से आया? तुम्हारे पिता तो बहुत बड़े शिकारी और लड़ाकू आदमी हैं। भारतीय सेना से लोहा लेने के लिए उन्होंने अपने लड़ाकू नागाओं की टुकड़ी खड़ी कर रखी है।"

ओवेन ने हसते हुए जवाब दिया, "मेरे पिता बहुत अच्छे शिकारी हैं, कुशल योद्धा हैं, लेकिन वे एक सफल पति और स्नेही पिता भी हैं।"

"अपने पिता को तुमने विभिन्न रूपों में देखा है। मैं तुम्हारी प्रतिभा का कायल हूं। लेकिन, तुमने मुझमें क्या देखा है कि मेरे लिए इतना कष्ट उठा रही हो?"

राम की बात सुनकर ओवेन कुछ देर तक राम को निहारती रह गई थी। फिर बोली, "मैंने तुममें वही देखा है, जो एक लड़की लड़के में देखती है। 'मैंने तुम्हें ऐसी स्थिति में पाया था, तो मुझमे सेवा के अतिरिक्त कोई अन्य भाव जगने का प्रश्न ही नहीं था। आज तुम जिस स्थिति में हो, उसे देखकर लगता है कि मेरा जीवन सचमुच ही सार्थक हो गया।"

ओवेन की अन्तिम बात सुनकर राम भीतर ही भीतर दर्द से कराह उठा। इस अप्रत्याशित प्रतिफलन को स्वीकारने के लिए वह तैयार नहीं था। अनायास ही अन्तर वेदना की असह्राय टीस से उसकी आंखें बन्द हो गयी। निशा की छवि पैनी कटार की तरह उसकी आंतों को चीरती हुई ब्रह्माण्ड की असंख्य शिराओं को झकझोर गई। वह मन ही मन मूक चीत्कार करता हुआ प्रार्थना करने लगा, "यह क्या है मेरे प्रभु ! मुझमे अन्तरंग परीक्षा देने की अब शक्ति नहीं है। मुझे क्षमा करो, मेरी रक्षा करो। मैं बहुत ही असमर्थ था, हमेशा असमर्थ रहा और आज भी असमर्थ हूं।"

ओवेन की नजरें राम के चेहरे पर गड़ी हुई थी। राम की भंगिमा देखकर वह घबरा उठी। उसी घबराहट मे वह अपने आसन से उठकर राम के बिस्तर पर आ गई और उसने झुककर राम के कंधों को पकड़ लिया। इस सुखद स्पर्श से राम ने आंखें खोल दी। ओवेन उसके चेहरे पर झुकी हुई थी। वह आजिजी के स्वर में बोली, "क्या हुआ ? ठीक तो हो ?...बोलते क्यों नही ?"

राम के चेहरे पर सहजता आ गई। उसने अपनी दोनों हथेलियों की अंजुलियों से ओवेन का चेहरा थाम लिया और मुस्कराकर सिर हिलाकर संकेत मे ही समझा दिया कि उसे कुछ नही हुआ है। उसके बाद वह बिस्तर से उठने ही जा रहा था कि अप्रत्याशित ढंग से ओवेन की बाहों में सिमट गया। दोनों एक-दूसरे से आबद्ध बैठे रहे। ओवेन आनन्दातिरेक से भरकर भाव-समाधि में लीन हो गई, और राम अतीत की अतल गहराई में गिरने के अह-सास से बचने की कोशिश मे भीतर ही भीतर छटपटा रहा था।

राम में चलने-फिरने की ताकत आ गई थी। वह जल्दी से जल्दी वहां से रवाना हो जाना चाहता था, ताकि ओवेन से विलग होने के दुःख की अवधि लम्बी न हो। वस्तुतः वह ओवेन के निश्छल प्रेम से मुक्त होना चाहता था। वह जानता था और मानता था कि ओवेन को अंधेरे मे रखकर वह अक्षम्य अपराध करेगा। ओवेन ने उसके लिए इतनी तपस्या की है, उसकी इतनी सेवा की है कि उसका ऋण चुका सकना असंभव कल्पना थी। ऐसी स्थिति मे जब

उसे अपनी इस यात्रा के उद्देश्य का ध्यान आता, तब तो वह ग्लानि से भर उठता था। उसे भेजा गया था कि वह विद्रोही नागाओं की गतिविधियों का अध्ययन करे। उनकी बात और व्यवहार से परिचित होकर उनकी भीतरी ताकत का अन्दाजा लगाये। लेकिन, 'आए थे हरिभजन को ओटन लगे कपास।' वह ऐसी स्थिति में वहां पहुंचा कि प्रेम, करुणा, दया, सेवा और त्याग के अति-रिक्त वह कुछ भी नहीं देख सका। यदि ओवेन और उसके पिता को मालूम हो जाय कि वह किस उद्देश्य से उनके इलाके में घुसा था तो ओवेन पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? उसके पिता क्या सोचेंगे? भविष्य में आने वाले परवश मानवों की सेवा-सहायता कोई किस प्रकार कर सकेगा? यह विचार आते ही राम मन ही मन कांप उठता। वह राजनीति से, यहां तक कि राष्ट्रीयता तक से घृणा करने लगा। आखिर यह सब किस उद्देश्य से किया जा रहा है? इसमें किसका लाभ है? किसके अहम् की तुष्टि होती है? कौन जीतता है और किसे पराजय मिलती है? इस जीत या पराजय के लिए कुर्बानी कौन देता है? और, जो कुर्बानी देता है, क्या उसे कोई लाभ भी मिलता है? भारत के दो हिस्से बन गए, फिर भी युद्ध जारी है। इन युद्धों से किसके अस्तित्व की रक्षा हुई? ...राम किसी नतीजे पर पहुंच नहीं पाता।

राम ने स्वास्थ्य-लाभ करने के विचार से सुबह और शाम जंगलों में घूमना शुरू किया। ओवेन छाया की तरह उसके पीछे लगी रहती थी। वह हमेशा राम के सान्निध्य में रहने की कोशिश करती थी। वह नहीं चाहती थी कि राम उससे पल भर के लिए भी अलग हो। चलते-चलते राम की बांहें कन्धे पर रख लेती और कहती, "पहली बार तुम्हें इस तरह अपने घर लेकर आई थी।" यह कहकर वह राम का सारा बोझ अपने बायें अंग पर उठा लेने और घिसट-घिसट चलने का अभिनय करती-करती हंसने लगती। काश, ओवेन उस समय राम के होंठों पर उभरी हुई विषादपूर्ण मुस्कराहट देख पाती! उस मुस्कराहट में उसकी अनंत आन्तरिक वेदना और परवशता मुखर हो उठती थी। राम जब कहीं बैठता, तब ओवेन उसकी गोद में सिर रखकर लेट जाती। कभी-कभी वह राम के सिर को अपनी गोद में रखकर उसके बालों को सहलाने लगती। राम जानता था कि ऐसा उद्दाम प्रेम उसे किसी से नहीं मिला था। फिर भी राम वचनबद्धता के कारण मजबूर था। घर से विदा होते समय यदि उसने अपनी मां से यह नहीं कहा होता कि मेरे जीवन में दूसरी लड़की अब नहीं आ सकती तो शायद अपनी परवशता के पाश को वह दूर फेंक देता। न जाने

क्यो, उसे विश्वास था कि निशा उसकी है, और उसीकी रहेगी। निशा निश्चय ही उसकी प्रतीक्षा मे होगी। काम की आग से वह बहुत बार खेल चुका था। अब तो उस आग की राख भी उसमें शेष नही थी। वह ऐसे प्रेम के सरोवर में उतर चुका था, जहां अमृत की उर्मियां और लहरें अनवरत उठ रही थी। राम ने तय किया कि वह ओवेन को अधिक दिनों तक अंधेरे मे नहीं रखेगा। डर रहा था, तो एक ही बात से कि पता नहीं ओवेन उसकी व्यथा-कथा को सत्य समझेगी या झूठ ! यदि उसे सत्य समझेगी तो बर्दाश्त भी कर पाएगी या नही ?

बहुत आत्म-मंथन के बाद एक दिन तीसरे पहर वह ओवेन के साथ उसी स्थल पर पहुचा, जहां ओवेन से पहली बार उसकी भेंट हुई थी। ओवेन ने राम का सिर अपनी गोद में रख लिया। राम बार-बार प्रयत्न करके भी अपनी बात नही कह पा रहा था। उसके भीतर की छटपटाहट और बेचैनी तूफानी समुद्र की उत्ताल तरगो को भी मात दे रही थी। ज्यों ही वह अपनी बात कहना चाहता था कि ओवेन उसकी बीमारी के समय की कोई न कोई बात कहकर खिलखिला पड़ती। राम बेहोशी की हालत में प्रलाप किया करता था। ओवेन उस प्रलाप के समय उच्चारित शब्दों को मुंह बना-बनाकर बोलने लगती और फिर हंसने लगती।

राम बार-बार साहस बटोरने की कोशिश करता, तभी ओवेन की चंचल चपल देह-यष्टि उसके तन-मन पर हावी हो उठती। दो दिन पहले ही गांव के नागा युवक और युवतियों ने मिलकर राम के सम्मान में नृत्य का आयोजन किया था। ओवेन की लयबद्ध देह-यष्टि अभी भी राम के हृदय में उठती हुई लहरों पर तैर रही थी। उस दिन ओवेन अपनी सहेलियों के साथ नाचती जा रही थी और बीच-बीच मे उसकी आंखें राम को निहारने लगतीं। और जब ओवेन के होठों पर एक अनिर्वचनीय मोहक मुस्कराहट थिरक उठती थी तब राम सब कुछ भूल जाता था'''अपना अतीत भी।

राम समझ नही पा रहा था कि वह ओवेन को कैसे समझाये ? कहां से बात शुरू करे ? उसके भीतर दर्द का ऐसा बेगवान तूफान उठ रहा था कि कभी-कभी मन ही मन वह ईश्वर से कह उठता था कि इस जीवन से तो मृत्यु भली ! कितना निरर्थक है उसका जीवन जो किसी के सन्दर्भ में सार्थक न हो सका ! एक मशीन का भी कुछ अर्थ होना है। एक जड़ पदार्थ की भी उपयोगिता होती है।

उसकी स्थिति कितनी दयनीय है ! होश आते ही वह गलत राह पर चल पड़ा। उसके कारण मां-बाप की सुख-शांति जाती रही। निशा अपने नाम के प्रतिकूल उसके जीवन में रोशनी बनकर आई। वह प्यार से पवित्र हो गया। किन्तु, उसके भाग्य मे पवित्र जीवन का सुख बदा नहीं था। वह इतना कायर निकला कि निशा के प्यार को सहेज तक नहीं सका। और अब यह ओवेन ! ओह, कितना अभागा है वह, कैसा निरर्थक, मजबूर !

यह सब सोचते-सोचते न जाने क्या हुआ कि उसके भीतर की वेगवती वेदना के कगार टूट गए। उसकी आंखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उस समय ओवेन एक प्रिय सहेली की दिलचस्प बात कहकर हंस रही थी। अचानक उसकी नजरें राम के चेहरे पर पड़ी तो उसकी हंसी एकाएक रुक गई। वह घबराकर राम के चेहरे पर झुक गई और बहुत ही बेचैन स्वर में पूछने लगी, "क्या हुआ, क्यों रो रहे हो ? मैंने कोई ऐसी-वैसी बात कह दी क्या ? बताओ ना—तुम्हें मेरी कसम ! यदि साफ-साफ बात नहीं बताओगे तो मैं जान दे दूंगी। मैं तुम्हें रोते नहीं देख सकती।"

ओवेन की बातें सुनकर राम का रहा-सहा धीरज भी समाप्त हो गया। वह अपने क्रन्दन पर नियन्त्रण रखने की कोशिश में जोर-जोर से हिचकियां लेने लगा। ओवेन ने अपनी दोनों बांहें राम के गले में डालकर उसे अपने वक्ष पर खींच लिया। काफी देर तक राम फूट-फूट कर रोता रहा। बोला कुछ नहीं। ओवेन उसे अपने वक्ष से लगाए बांहों में आबद्ध किए छटपटाती रही और चीख-चीखकर रोने का कारण पूछती रही। राम की बांहों को और देह को नोचती-खसोटती रही। यह स्थिति काफी देर तक बनी रही। अन्त में राम की बेचैनी और छटपटाहट का वेग थम गया। उसने अपने गले में पड़ी हुई ओवेन की बांहों को ढीला कर दिया। वह उठकर बैठ गया और बहुत ही संयत स्वर में बोला, "ओवेन तुम मुझे बहुत प्यार करती हो ना !…मैं भी तुम्हें बहुत प्यार करता हूं। तभी तो तुम्हें ओवेन कहकर पुकारता हूं, जो तुम्हारे प्यार का नाम है। मेरी अनुभूति [illegible]
से नहीं चाहा। मैं तुम्हारे [illegible]
तुम्हारे इस प्यार के आगे [illegible]

"तुम क्या बोल रहे हो, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। मैंने जान-बूझकर कुछ नहीं किया और न कर रही हूं, और जो कुछ कर रही हूं, वह सोच-समझकर किया भी नहीं जा सकता।"

"मान लो कि मैं यहां से चला जाता हूं, तो तुम क्या करोगी ?"—राम की बात सुनते ही ओवेन सशंकित होकर राम की आंखों में कुछ ढूंढने लगी। राम ने अपनी बात जारी रखी, "मुझे जाना ही होगा। लेकिन, तुम्हारी आशा और अनुभूति के बगैर मैं यहां से जा नहीं सकता।"

"मतलब ?"

"मतलब यह कि तुम मेरे लिए अलौकिक प्रेम की अछूती अभिव्यक्ति हो। मेरी दृष्टि में तुम मेरे जीवन की प्रतिध्वनि हो। तुम्हारा आतिथ्य मेरे लिए ऐसा है, जिसे पाने की मेरी बेचैनी अनंतकाल तक बनी रहेगी। लेकिन, इसे प्राप्त करके सहेज रखने की इच्छा मैं नहीं कर सकता।"

राम की बातों का अर्थ ओवेन समझ नहीं पा रही थी। लेकिन, एक अदृश्य शंका उसके हृदय के भीतर वृहत् आकार लेती चली जा रही थी। उसने राम के दोनों कन्धों को झकझोरते हुए कहा, "घुमा-फिराकर बातें मत करो। मैं क्या हूं, यह मैं जानती हूं। क्या चाहते हो, साफ-साफ कहो।"

"मैं बहुत ही अभागा हूं, ओवेन। मुझे यहां से जाना ही होगा।"

"क्यों जाना होगा, यही तो जानना चाहती हूं!"

"मैं तुम्हें धोखे में नहीं रखना चाहता। मैं भारत सरकार के बहुत ही गुप्त विभाग का अधिकारी हूं। मुझे विद्रोही नागाओं की गतिविधियों की जानकारी लेने के लिए यहां भेजा गया था। रास्ते में मैं बीमार पड़ गया। तुम्हारे सान्निध्य में मुझे जो जानकारी मिली है, वैसी उपलब्धि मुझे स्वर्ग मिलने पर भी नहीं होगी। जन्म से लेकर अब तक जिस मां-बाप के घर में रहा वहां भी मुझे ऐसा अनुपम प्रेम नहीं मिला ···।"

"ठीक है, ठीक है। तुम किसी भी विभाग में काम करो, मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। तुम चाहे जहां रहो। यदि यहां से जाना ही चाहते हो तो मैं भी चलने को तैयार हूं। मैं जानती हूं, मेरे माता-पिता यहां से जाने देने में रुकावट डालेंगे। लेकिन, मुझे उनके प्यार पर विश्वास है। वे मेरे सुख की राह में बाधक नहीं होंगे। तुम्हारे साथ जाने की अनुमति उन्हें देनी ही होगी।"

राम तय करके आया था कि आज वह ओवेन को—अपनी सखा ओवेन को समझा-बुझाकर विदा ले लेगा। राम जानता था कि ओवेन का दूसरा नाम नोरसिंग है। सब लोग उसे नोरसिंग कहकर ही पुकारते हैं। उस दिन उसने नोरसिंग के बालों में उंगलियां फेरते हुए पहली बार प्यार से पुकारा, "ओवेन, मैं तुम्हारा नहीं हो सकूंगा। मुझे क्षमा कर दो।" बड़ी कठिनाई से वह इतनी

बात कह पाया था।

ओवेन हतप्रभ होकर राम की ओर देखती रह गई थी। कुछ देर बाद वह सामान्य स्थिति में आती हुई बोली, "कोई बात नहीं, राम ! मैं इतनी गई-बीती नही हूं कि जबरदस्ती तुम्हारे गले का ढोल बन जाना चाहूंगी। यदि मुझे प्यार नही कर सकते तो मैं तुम्हें मजबूर भी नही करूंगी।"

राम ओवेन की बातों से अधिक उसकी भाव-मुद्रा से मर्माहत हो उठा। उसने नोरसिंग के दोनों कंधों को पकड़कर उसका चेहरा अपनी ओर करते हुए कहा, "तुमने मुझे गलत समझा, ओवेन। तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। मैं नही जानता कि तुम्हारे बिना मैं किस प्रकार रह पाऊंगा। लेकिन, मैं किसी के प्रति वचनवद्ध हो चुका हूं।"

यह कहकर राम कुछ देर खामोश रहा। नोरसिंग की भाव-भंगिमा सहज हो चुकी थी। राम ने उसे अपने और निशा के सम्बन्ध के बारे में पूरी बात बता दी। राम की व्यथा-कथा सुन लेने के बाद नोरसिंग के चेहरे पर अजीब मुस्कराहट थिरकने लगी; ऐसी मुस्कराहट, जिससे असह्य पीड़ा परिलक्षित हो रही थी। मन के भीतर हृदय-विदारक क्रन्दन था, किन्तु बाहर कांपते हुए होठों से हंसी छलक रही थी। नोरसिंग ने अपने मन के भीतर उठने वाले भूकम्प को दबाते हुए कहा, "ठीक है राम, अपने घर जाओ। भले निशा तुम्हारा इंतजार न कर पाई हो, लेकिन, मैं तुम्हारा इन्तजार करूंगी। मैं जरूर इंतजार करूंगी ' एक साल, दो साल, तीन साल, यहां तक कि जीवन भर'''यदि माता-पिता और जाति ने अनुमति दे दी। ओवेन तुम्हारी है। अब मुझे ओवेन कहकर कोई पुकार नही सकेगा।"

राम ने यह बात अपने पिता राजदेव जी से कह सुनाई थी। इस घटना के घटित हुए पांच-छह साल बीत चुके थे। राजदेव के मन मे यह कौतूहल जाग पड़ा कि नोरसिंग कही राम की तपस्विनी ओवेन तो नहीं है। तुरंत ही उन्होंने मन ही मन प्रतिवाद भी कर दिया कि छः साल तक वह नागा तरुणी ओवेन राम का इन्तजार नहीं कर सकती।

अच्छा हुआ कि राजदेव ने अपनी जिज्ञासा नोरसिंग के सामने प्रकट नही की। एक हफ्ते बाद राजदेव घर के बाहर बैसाखी के सहारे चलने-फिरने लगे। अभी भी वह भीतर से बहुत कमजोर महसूस करते थे। पच्चीस-तीस कदम चलने के बाद ही थककर खड़े हो जाते थे। इसलिए, अधिकतर समय वे अपने

कमरे के भीतर ही बिताया करते थे। डाक्टर ने कह दिया था कि पन्द्रह-बीस रोज के बाद उन्हें यात्रा पर जाने की अनुमति दी जा सकती है। राजदेव का धीरज समाप्त हो चुका था, इसलिए वे पन्द्रहवें रोज ही चल देने को तैयार हो गए। लेकिन, नोरसिंग का आग्रह वे टाल नहीं सके, इसलिए पांच रोज के लिए और रुक गए।

नागा जाति नृत्य और संगीत के लिए विख्यात है। शिकार उनका प्रमुख शौक है, नृत्य उनके लिए कभी न मिटने वाला नशा। कोई भी समारोह हो, बिना नृत्य के सम्पन्न नहीं हो सकता। नोरसिंग ने राजदेव के स्वस्थ होने के उपलक्ष्य में नाच-गाने का आयोजन किया था। नोरसिंग के घर से लगभग दो सौ गज दूर मेडोचां के घर के पास नागा-नाच की व्यवस्था की गई थी। राजदेव लगभग दो घण्टे तक नाच देखते-देखते थक गये, तो उन्होंने नोरसिंग को इशारे से बुलाकर पूछा, "तुम लोगों का यह नाच कब तक चलेगा?"

"अभी दो घण्टे और।"

"तो मुझे आज्ञा दो। मैं थक गया हूं।"

"चलिए, मैं आपको पहुंचा आती हूं।" नोरसिंग ने यह कहकर राजदेव को हाथ का सहारा देकर उठाया। राजदेव नोरसिंग को रोकते रहे, फिर भी वह नहीं मानी। वह जानती थी कि नाच-स्थल से उसका घर दूर है और वह भी चढ़ाई पर। राजदेव को बैसाखी के सहारे चलने का पूरा-पूरा अभ्यास भी नहीं हुआ था। यह सोचकर नोरसिंग उन्हें अपने घर तक छोड़ने चली आई।

राजदेव काफी देर तक बिस्तर पर पड़े-पड़े नोरसिंग के बारे में सोचते रहे—'नोरसिंग कहीं ओवेन ही तो नहीं है? नागा जाति के लोग लड़कियों के कई नाम रखते हैं।' "यह विचार करते-करते राजदेव आखिर सो नहीं पाए तो कमरे में ही चक्कर काटने लगे। चक्कर काटते-काटते वे कमरे के दूसरे सिरे पर पहुंचे ही थे कि अचानक उनका बायां पांव लड़खड़ा गया। वे अपना सतुलन कायम नहीं रख सके और उनकी बैसाखी दीवार से जा टकरायी। गनीमत यह हुई कि उन्होंने बाएं हाथ से दीवार का सहारा ले लिया था, अन्यथा वे मुंह के बल जा गिरते। राजदेव तीन-चार मिनट तक दीवार के सहारे खड़े होकर शक्ति-संचय करते रहे। उसी समय उनकी नजर बेंत के खुले हुए बक्से पर पड़ी, जो उनकी बैसाखी से टकराकर नीचे जा गिरा था। बक्से का सामान इधर-उधर बिखर गया था।

राजदेव ने दीवार का सहारा लिए-लिए बैसाखी उठा ली। गिरे बक्स के

बिखरे हुए सामान को सहेज देने के विचार से वे वहां पहुचे जहां बेंत का बक्सा गिरा हुआ था। वे वहीं बैठ गए और बिखरे हुए सामान को उठा-उठाकर बक्से में रखने लगे। सामान रखते-रखते उनकी नजर एक चित्र पर पड़ी, जिसे देखते ही उन्हें चक्कर-सा आ गया। वह चित्र राम का था। अनायास ही उनके मुंह से आह निकल गई, 'हे ईश्वर! यह तुमने क्या किया ? कहां पहुचा दिया मुझे ?…यह लड़की तो ओवेन ही है…राम की तपस्विनी।' राजदेव चित्र हाथ में लिए काफी देर तक चित्र-खचित से बैठे रह गए। जब उन्हें होश आया, तब उन्होंने येन-केन-प्रकारेण, बक्से का सामान सहेजकर उसे यथा-स्थान रख दिया। उन्हें लगा, जैसे उनके शरीर की सभी शक्ति शेष हो चुकी हो। वे खाट पर जाकर लेट गये। उनकी आंखों से नींद उड़ चुकी थी। विधाता ने पिता-पुत्र के साथ जो व्यंग किया था, उसे राजदेव बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। वे जानते थे, यदि नोरसिंग को उनका परिचय मालूम हो जायेगा और यदि वह जान जायेगी कि राम को निशा अब तक नहीं मिली है, तो निश्चय ही नोरसिंग उनके साथ हो लेगी। राजदेव इसके लिए कतई तैयार नहीं थे। वे बहुत पहले, इससे कुछ भिन्न स्थिति में निशा को लेकर दिल्ली पहुचे थे। इसके बाद उनके परिवार में जो कुछ हुआ, निशा की जो दुर्दशा हुई, राजदेव को जो कुछ भोगना पड़ा था, उसे दुहराने की शक्ति अब उनमें रह नहीं गई थी।

दो घण्टे बाद नोरसिंग कमरे मे पहुंची। वह दबे पाव राजदेव के बिस्तर के पास तक आई और झुककर राजदेव की सांसों की आहट लेती रही। फिर वह दबे पांव ही अपने कमरे की ओर चली गई। राजदेव उस समय तक जग रहे थे। उस रात वे सो नही पाए। सुबह तक करवटें बदलते रहे।

जाने की तैयारी पूरी हो चुकी थी। टेमजन विद्रोही नागाओं के दल का नेता था, इसलिए प्रभावशाली भी। उसने राजदेव के लिए जीप की व्यवस्था कर दी थी। ड्राइवर की जगह स्वयं जीप के मालिक फादर आर्चर आ गए थे। वे बहुत ही कुशल ड्राइवर थे। यही उचित समझा गया कि फादर आर्चर ही जीप चलाकर राजदेव को कोहिमा तक पहुचा दें। इस तरह रास्ते के खतरों से बचा जा सकता था, क्योंकि आर्चर को लगभग सभी विद्रोही नागा जानते-मानते थे। भारतीय अधिकारियों से भी फादर का अच्छा-खासा मेल-जोल था।

विदाई के समय नोरसिंग बहुत रोई। उसे रोते देखकर टेमजन की आंखें

भी कई बार भर-भर आईं। राजदेव के भीतर तो जैसे महासागर हिलकोरे ले रहा था। उन्हें लग रहा था कि ज्वार उठ-उठकर उनकी आंखों के भीतरी परतों से टकरा रहा है। वे तो रात भर उद्विग्न बने रहे थे। जब सचमुच ही विदा लेने का समय आ पहुंचा, तब उनकी दशा अत्यधिक शोचनीय हो गयी। उनकी आत्मा उन्हें धिक्कार रही थी, क्योंकि वे कायर की तरह भागे जा रहे थे। वे जानते थे कि दूसरा उपाय भी नहीं। उन्होंने मन ही मन यह संकल्प अवश्य लिया कि वे दिल्ली पहुंचते ही राम को नागालैंड भेजेंगे।

उपसंहार

उस सुबह सभी समाचार पत्रों में वायुयान दुर्घटना का समाचार मोटी-मोटी सुर्खियों में छपा था। पान-अमेरिकन-वे का वायुयान था, इसलिए भारत में, विशेषकर दिल्ली में, जिस किसी ने भी यह समाचार पढ़ा, वह अवाक् होकर रह गया। ऐसे लोगों को मालूम नहीं था कि उस वायुयान में भारत के एक प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक के विख्यात सम्पादक राजदेव भी सवार थे।

ललिता हाथ-मुंह धोकर उठी ही थी कि फोन की घण्टी बज उठी। उस समय घर में हीरामन के अतिरिक्त और कोई नहीं था। राम पिछले ढाई साल से बाहर ही बाहर था। हीरामन ने फोन का चोगा उठाया तो उधर से लालनारायण बोल रहा था, "कौन हीरामन ? तुमने आज का समाचार पत्र पढ़ा ? पान-अमेरिकन-वे का वह वायुयान जिसमें चाचा जी जापान जा रहे थे, दुर्घटनाग्रस्त हो गया। आशंका है कि एक भी यात्री नहीं बच सका।"

हीरामन टेलीफोन का चोगा हाथ में लिये किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़ा का खड़ा रह गया। ललिता हीरामन के चेहरे का भाव पढ़कर आतंकित हो उठी। वह आतुर होकर पूछ बैठी, "क्या बात है ?" हीरामन का चेहरा फक पड़ा रहा। उसके मुंह से कोई शब्द नहीं निकला। रुग्णावस्था में भी ललिता से नहीं रहा गया तो उसने झपटकर चोगा अपने हाथ में ले लिया। उसने लालनारायण की आवाज पहचान ली। वह कह रहा था—धीरज से काम लो, चाची। जो विधि का विधान होता है, उसे कोई मेट नहीं सकता।

ललिता ने किंचित् कर्कश स्वर में पूछा, "कहते क्या हो, क्या हो गया है ?"

उधर से लालनारायण ने दुखदायी समाचार फिर से सुना दिया। ललिता के हाथ से टेलीफोन का चोगा नीचे गिर पड़ा। वह चक्कर खाकर गिरने ही जा रही थी कि हीरामन ने उसे थाम लिया और उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

काफी देर तक घर में सन्नाटा रहा। हीरामन अपनी मा के हाथ-पांव सहलाने में लग गया। वह स्वयं बुरी तरह घबरा गया था। उसके हाथ-पाव

फून रहे थे। वह करे तो क्या करे ! कुछ ही देर में प्रेस से राजदेव के बहुत से सहयोगी आ गये। सभी दुख और सहानुभूति से आकुल-व्याकुल हो रहे थे। सहानुभूति जताने वालों के टेलीफोन पर टेलीफोन आने लगे। एक आदमी की ड्यूटी टेलीफोन सुनने पर ही लगा दी गई।

दस बजते-बजते राजदेव के घर पर मेला-सा लग गया। पत्रकार, साहित्यकार, विधायक, सांसद् जैसे बहुत-से गण्यमान्य व्यक्तियों का तांता लग गया। ऐसे लोग एक-एक करके ललिता के कमरे में आते, सान्त्वना के शब्द कहते और विषादयुक्त चेहरे बनाए वापस चले जाते। सांसदों और सम्मानित विशिष्ट व्यक्तियों की अगवानी और सत्कार करने का दायित्व लालनारायण ने अपने ऊपर ले लिया था। वह प्रत्येक विशिष्ट व्यक्ति की दरवाजे पर से ही अगवानी करके ललित के पास ले जाता और फिर उस व्यक्ति को मोटर तक पहुंचा आता। विशिष्ट व्यक्तियों के साथ लालनारायण का व्यवहार ऐसा होता, जैसे राजदेव के निधन से उसका सब कुछ स्वाहा हो गया हो। प्रत्येक विशिष्ट व्यक्ति लालनारायण के दुख से दुखी हो उठता और गाड़ी में बैठने से पहले लालनारायण को गले से लगाकर ढांढस बधाने की कोशिश करता।

ललिता सिर झुकाए फर्श पर ही जड़वत् बैठी रही। वह विश्वास नहीं कर पा रही थी कि राजदेव उसे छोड़कर जा चुके हैं। जो लोग आकर उससे सहानुभूति प्रदर्शित करते, कदाचित् ललिता उन लोगों की बात भी समझ नहीं पाती थी। उसने बड़े-बड़े पारिवारिक नाटक अपने जीवन में देखे थे। एक से एक दुखान्त घटना वह झेल चुकी थी। ललिता को लग रहा था, जैसे आज वह कोई सामाजिक, राजनीतिक नाटक देख रही हो, जिसका प्रत्येक पात्र रंग-बिरंगा मुखौटा लगाए आता है और अपनी भूमिका अदा करके चला जाता है।

दिन भर यह नाटक चलता रहा। हीरामन अधिकतर अपनी मां के बगल में ही बैठा रहा। शाम होते-होते नंदिनी भी अपनी ससुराल से चली आई। नंदिनी और निवेदिता को रोते देखकर, ललिता के मुख से पहली बार आवाज निकली, "क्यों रोती है पगली ! तुम्हारे पिता मरे नहीं हैं। यह हो ही नहीं सकता। जीवन भर मैंने जो शुभ कर्म किए हैं उनका फल क्या यही हो सकता है ? नहीं, नहीं, यह असम्भव है। मैंने किसी को कभी सताया नहीं। अपने-आपको ही मारती रही हूं, सताती रही हूं। अपना दुख तक किसी को बांटने नहीं दिया। दूसरों के दुख में अपना दुख देखती रही हूं। ऐसे कामों

का परिणाम वैधव्य नही हो सकता। मैं विधवा हो ही नही सकती। यह मेरा अटल विश्वास है।"

मां की बातें सुनकर नंदिनी और निवेदिता ही नही हीरामन भी चौंक उठा। उन्हे आशंका हुई कि उनकी मां दुख के अतिरेक से कहीं पागल तो नहीं हो गई है। वे अत्यधिक चिन्तित हो उठे। नतीजा यह हुआ कि वे तीनों रोना-धोना बन्द कर अपनी मां के उपचार की चिन्ता मे लग गए। इस काम में लालनारायण ने आगे बढ़कर अपने चचेरे भाई-बहनों का साथ दिया। विशेषज्ञ डाक्टर को बुलाया गया। डाक्टर ने राय दी कि ललिता को फिलहाल सुई देकर सुला दिया जाय।

एक हफ्ते बाद, सरकारी तौर पर समाचार की पुष्टि कर दी गई। "पान-अमेरिकन-वे का विमान भारत-बर्मा की सीमा के पास नागालैंड के पहाड़ी इलाके मे गिरकर छिन्न-भिन्न हो गया। वायुयान में सवार सभी यात्री और वायुयान के कर्मचारी मारे गये। मृत व्यक्तियों में देश के विख्यात वरिष्ठ पत्रकार श्री राजदेव भी थे। उनके कोट से उनकी पहचान कर ली गई है। उनके पार्थिव शरीर का जला हुआ खंड, कोट सहित, कल सुबह तक दिल्ली पहुंच जायगा।"

ललिता फिर भी मूक और शून्यवत् बनी रही। वह शून्य-दृष्टि से किसी एक बिन्दु पर लगातार देखती रहती। लोग आते-जाते रहते, लेकिन, वह नजर उठाकर किसी को भी नही देखती।

राजदेव के बड़े भाई पुष्कर भी आ पहुंचे थे। राजदेव के जले हुए शव-खंड के दिल्ली पहुंचते ही दाह-संस्कार पूरा करने की तैयारी होने लगी। समस्या थी ललिता को राजी करने की। किसी मे यह हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह ललिता से विधवा के अनुरूप रस्म। अदायगी करने की बात कह सके। अन्त मे यह काम पुष्कर को सौंपा गया। पुष्कर ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक गीता आदि धर्म-ग्रन्थों के उद्धरण दे-दे कर ललिता को समझाया, "यह शरीर नाशवान् है। इसका अन्त होना ही है। तुम्हारा दुख स्वाभाविक है। लेकिन, तुम्हे इस बात का संतोष होना चाहिए कि राजदेव का यश सदा-सर्वदा बना रहेगा। वह अपनी कीर्ति के बल पर अमर हैं। शरीर तो वस्त्र के समान है, जिसे आत्मा बदल देती है। राजदेव मरे नही, वे तो अमर हो गये।"

ललिता चुपचाप अपने पति के बड़े भाई का प्रवचन सुनती रही। पुष्कर ने अनुभव किया कि ललिता पर उनकी बातों का कोई असर नहीं हो रहा है।

इसलिए उन्होने सीधी बात शुरू की—"अजीब स्थिति में यह मृत्यु हुई। मृत्यु के आठ रोज बाद दाह-संस्कार हुआ। इस तरह श्राद्ध-कर्म में भी बाधा पड़ी। यह उचित नहीं हुआ। उसपर से तुमने ज़िद बांध रखी है। हम लोग हिन्दू है, हिन्दुओ मे भी ऊंची जाति के है। यदि हम लोग ही रस्म-रिवाज और परम्परा का निर्वाह नही करेंगे तो धर्म कहा रह जाएगा ? अपनी ज़िद छोड़ो। तुम्हारी प्रतिष्ठा इसी मे है कि तुमने विवाह के समय सिर और हाथ मे जो कुछ धारण किया है, उसे त्याग दो।"

यह सुनते ही ललिता का पीत-वर्ण मुख-मण्डल क्रोध से लाल हो उठा। *उसकी आखो से जैसे चिनगारी छिटकने लगी। वह सिर उठाकर कठोर स्वर* मे बोली, "आज तक मैंने अपने परिवार में बड़े तो दूर, छोटों के सामने भी मुंह नही खोला। बहुत-सी अनुचित बातें देखने-सुनने के बाद भी कम से कम आपको जवाब कभी नहीं दिया। आज मुझे कहना पड़ता है कि यह सब नाटक बन्द कीजिए। मैं सधवा हूं और सधवा मरूंगी। न जाने किस अनजान बदकिस्मत आदमी के जले हुए शरीर के टुकड़े का दाह-संस्कार आप लोगों ने मेरे पति के नाम पर कर दिया है। आप लोगों ने मुझे लगभग पागल करार दे दिया है। मैं समझती हू कि आप सब पागल हो गए हैं। आप लोगों ने एक बार भी नही सोचा कि जिस व्यक्ति का पूरा शरीर जल गया, शरीर का निचला और ऊपरी अग तक जलकर राख हो गया, उस व्यक्ति का कोट और कोट की जेबो मे पड़े कागज़ात किस प्रकार सही-सलामत बच रहे हैं"। मैं हाथ जोड़कर आप लोगों से विनती करती हू कि मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मुझे अब किसी की सहानुभूति की आवश्यकता नही है।"

ललिता को उसकी हालत पर छोड़ देने के लिए कम से कम पुष्कर तैयार नही थे। ललिता अपनी ज़िद पर अड़ी रही और पुष्कर ने हीरामन को अपनी ओर मिलाकर श्राद्ध आदि संपन्न करा दिया। इस बीच ललिता का साथ केवल निशा दे रही थी। एक मूक दर्शक की तरह वह ललिता के पास बैठी-बैठी सब कुछ देखा करती। न जाने क्यों, उसे देखते ही पुष्कर का पारा चढ़ जाता। वह किसी न किसी बहाने उस पर व्यंग्य-बाण भी चला दिया करते। निशा मुस्कराकर चुप रह जाती। निशा के भीतर एक ही सवाल उठता कि राम अब तक क्यो नही आया ? उसने पता लगाने की कोशिश की तो मालूम हुआ कि वह देश के पूर्वी भाग में नियुक्त है, जहां भयंकर युद्ध की तैयारी चल रही है। कभी-कभी वह अशुभ कल्पनाओं के चक्कर मे पड़कर मन ही मन

कांप उठती—'हे भगवान् ! इस भले परिवार के ऊपर यह तुम्हारा कैसा कोप प्रकट हुआ है ? क्या यही तुम्हारा न्याय है ?' लेकिन, निशा प्रकट में कुछ बोलती नहीं।

एक दिन पुष्कर गम्भीर मुद्रा बनाए ललिता के पास पहुचे और बोले, "इस तरह जिन्दगी कैसे कटेगी ? राम का अता-पता नही है। हीरामन अभी पढ़ रहा है। निवेदिता जवान हो चुकी है, उसकी शादी करनी होगी।" यह कहकर पुष्कर कुछ देर खामोश होकर ललिता के चेहरे पर आती-जाती रेखाओं को पढ़ने की कोशिश करते रहे। ललिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। निशा ललिता के पास ही चुपचाप बैठी हुई थी। पुष्कर ने अचानक ही उपेक्षा के स्वर मे निशा से कहा, "मैं बहू से कुछ घरेलू बातें करना चाहता हू। तुम जरा दूसरे कमरे में जाकर बैठो।"

"निशा पराई नही है। यह मेरे पास ही रहेगी।" ललिता ने तुरन्त प्रतिवाद के स्वर मे कहा। ललिता की इस बात का असर निशा पर विचित्र ढंग से हुआ। उसके होंठों पर मुस्कराहट कांपने लगी और न जाने क्यों उसकी आंखें छलक आईं।

ललिता की यह बात पुष्कर को बहुत बुरी लगी। वह तमककर बोले, "तुम्हारी जैसी मर्जी। मैं तो यह कहने आया था कि तुम लोगों को यह मकान छोड़ना पड़ेगा। मैं प्रेस गया था। वहां मैनेजर साहब से बात हुई। उनके अनुसार राजदेव के प्राविडेण्ट फण्ड के खाते मे लगभग सवा लाख रुपये जमा हैं। मैंने उनसे कह दिया है कि तुम्हारे दस्तखतों के लिए कागज-पत्र तैयार कर दिए जाएं।"

"यह सब करने की आपको क्या जरूरत पड़ी थी ?"—ललिता ने पूछा।

पुष्कर हंसने लगे। ललिता ने आखें उठाकर देखा, उस हंसी में गहरा अर्थ था। पुष्कर हंसते हुए ही बोले, "घर में मैं सबसे बड़ा हू। इस नाते कुछ कठोर कर्तव्य पूरा करने की जिम्मेवारी भी मुझ पर आ गई है। यदि राम यहां होता तो मैं इन मामलों में तुम्हें कष्ट न देता ..।"

"मैं आ गया हूं चाचा जी, मां को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं है।" —राम ने कमरे मे प्रवेश करते हुए कहा और वह लपककर मां से लिपट गया। ललिता की आखों से पहली बार अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। बेटे को अंग से समेटे-समेटे वह फफक-फफक कर रोती रही। ललिता को लगा, जैसे उसका सारा दुख दूर हो गया। वह अब तक अपने-आपको जंगली भेड़ियों

के बीच घिरी महसूस कर रही थी। राम को देखते ही उसे लगा, जैसे अंधकार छंट गया हो, जैसे जंगल का चप्पा-चप्पा प्रकाश से भर उठा हो, जैसे जंगली भेड़िए और गिद्ध सहमकर दूर जा खड़े हुए हों।

पुष्कर वहां से चुपचाप उठकर चल दिए। उन्होंने कई वर्षों के बाद राम को देखा था। फिर भी, उससे कुशल-क्षेम पूछने की उन्होंने कोई आवश्यकता नहीं समझी। उस समय वह स्वयं अपनी व्यूह-रचना से निकल भागने की चिन्ता में व्यस्त हो गए।

राजदेव की तथाकथित मृत्यु को पूंजी बनाकर लालनारायण ने दो-तीन केन्द्रीय मन्त्रियों से काफी लाभ उठा लिया था। साल भर से उनका इम्पोर्ट लाइसेन्स का एक मामला खटाई में पड़ा हुआ था। लालनारायण ने संबद्ध मंत्री को समझा-बुझा दिया कि राजदेव जी के श्राद्ध के तुरन्त बाद, उनके परिवार का भी भरण-पोषण करना है। मंत्री जी की सहानुभूति मिलते ही लालनारायण को लाखों रुपये का लाइसेन्स मिल गया। कुछ ऐसे मामले भी थे, जिनमें लालनारायण की गरदन फंसी हुई थी। उसने राजदेव की कथित मृत्यु का फायदा उठाकर उन मामलों से सम्बद्ध फाइल पर मंत्री से अनुकूल टिप्पणी लिखवा ली।

भाग्यवाद और जन्म-जन्मान्तरवाद जहां मनुष्य में ईश्वर और धर्म का भय उत्पन्न कर विवेक की गरिमा भर देता है, वहीं वह स्वार्थजनित सीमित परिवेश में पड़े मनुष्य के मन में कर्म-फल का भ्रान्तिमूलक अर्थ भी पैदा करता है। यह सही है कि विवेक के अभाव में ज्ञान निरर्थक है और यह भी सही है कि विवेक का उदय त्याग और दायित्व-बोध की भाव-भूमि से ही होता है। सीमित दायरों में घिरा हुआ व्यक्ति धर्म की सतही अभिव्यक्ति—आवरण—के वशीभूत होकर यह मान बैठता है कि उसके सभी कर्म पूर्व-जन्म के संस्कारों से प्रेरित है। वह वैसा ही है जैसा उसे कर्म-फल के अनुसार होना चाहिए था। वह जो कुछ भी करता है, भाग्य की अपेक्षा के अनुरूप करता है। पुष्कर के चेतन और उप-चेतन मन में इसी प्रकार की धारणाएं घर कर गई थीं। कचहरी में काम करते-करते उनका यह विचार दृढ़ हो गया था कि सम्बन्ध केवल पत्नी, पुत्र अथवा पुत्री से ही हो सकता है, अन्य के साथ तो व्यवहार होता है।

राम के आते ही पुष्कर ने अनुमान लगा लिया कि अब सीधी अंगुली से घी नहीं निकलने वाला है। वे चाहते थे कि राजदेव की संचित निधि उन्हें दे दी जाए और ललिता हीरामन को होस्टल में रखकर निवेदिता के साथ गांव में

चलकर रहे। उनकी यह योजना राम के आते ही हवा में उड़ गई। इसलिए वे पैंतरा बदलने के क्रम में चार-पांच दिन खामोश रहे।

एक दिन राम कहीं बाहर गया हुआ था। पुष्कर को मालूम हो गया कि डेढ़-दो हफ्ते के भीतर ही राम को अपने काम पर वापस जाना पड़ेगा। इसलिए अवसर देखकर उन्होंने ललिता से कहा, "राम अभी बच्चा ही है। मैं नहीं चाहता कि वह खेती-बारी से सम्बन्धित कानूनी दल-दल में फसे। वह व्यर्थ ही चिन्तित हो उठेगा और इसका प्रतिकूल असर उसकी नौकरी पर पड़ेगा।" ललिता सिर झुकाए चुपचाप पुष्कर की बातें सुनती रही। उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि पुष्कर कहना क्या चाहते हैं? पुष्कर ने ही अपनी बात आगे बढ़ाई, "शायद तुम्हें मालूम नहीं कि राजदेव के हिस्से की जमीन स्वयं पिता जी सूद-भरना कर गए थे। जो अब तक ज्यों की त्यों महाजन के कब्जे में है। अब तुम्हें शहर तो छोड़ना ही होगा। ऐसी हालत में कल्याण इसी में है कि जल्दी से जल्दी कर्ज के रुपये अदा करके अपनी जमीन छुड़ा लो।"

ललिता धप् से जमीन पर आ गिरी। अपने जेठ की यह नयी बात सुनकर वह अवाक् थी। वह जानती थी कि कागज पर बटवारा होने के बावजूद दोनों भाइयों की खेती-बाड़ी संयुक्त रूप से होती आई है। उसे यह भी मालूम था कि उसके हिस्से की उपज भी पुष्कर जी हड़प जाया करते हैं। विवेकशील पुरुष होने के नाते राजदेव ने अपने भाई से कभी हिसाब-किताब नहीं किया। उन्होंने खेत की उपज का कहने योग्य कोई हिस्सा भी नहीं लिया। बेशक, नंदिनी के विवाह के उपलक्ष में पुष्कर ने आठ हजार रुपये दिए थे।

ललिता को चुप देखकर पुष्कर जी ने सान्त्वना के स्वर में कहा, "उस कर्जा का सूद तो लगना नहीं है। मूल देने से ही जमीन वापस हो जाएगी। मूल रकम है पच्चीस हजार रुपये और आठ हजार मैंने बड़ी बिटिया के विवाह में कर्ज लेकर दिया था। उस आठ हजार का बेशक सूद लगेगा। मेरा अनुमान है कि लगभग पैंतालिस हजार दे देने पर तुम निश्चिन्त हो जाओगी।"

ललिता फिर भी कुछ नहीं बोली। उसने केवल अपनी नजरें उठाकर अजीब दृष्टि से पुष्कर को देखा। उस दृष्टि में यह प्रश्न मुखर हो उठा था कि तुम क्या सचमुच मेरे पति के सगे भाई हो?

पुष्कर उस प्रश्न को पढ़ नहीं सके। लेकिन, आंखों की बेधकता से बेशक मन के भीतर कहीं कांप उठे और बोले, "चिन्ता की कोई बात नहीं। तुम्हारी खेती मैं करवा दिया करूंगा। खेती-बाड़ी का सामान, जैसे हल, बैल, बीज और

खाद आदि की व्यवस्था तुम्हें जरूर करनी होगी। आजकल खेती में बहुत खर्च करना पड़ता है। यह भी एक उद्योग बन गई है। लेकिन, कोई बात नहीं, तीन-चार साल के बाद सब कुछ सहज हो जाएगा।"

इतना कहकर पुष्कर कमरे से जाने लगे कि निशा बोल उठी, "चाचा जी, आप एक बात कहना भूल गए!" पुष्कर ने मुड़कर आश्चर्य से निशा की ओर देखा। निशा ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "खेती करवाने के लिए पेशगी की राशि आपने नहीं बताई। बीस-तीस हजार तो लगेंगे ही। कुल खर्च बाबू जी की संचित निधि से अधिक नहीं होगा।"

पुष्कर आपाद-मस्तक जल उठे। निशा की यह हिम्मत! यदि पहलेवाली निशा होती तो कदाचित् वह उसे कच्चा ही चबा जाते। फिर भी अपने क्रोध पर नियन्त्रण रखते हुए उन्होंने कहा, "यह हम लोगों का घरेलू मामला है। इसमें बाहरवालों का दखल मुझे पसन्द नहीं।"

"मैं पहले भी कह चुकी हूं और फिर कहती हूं कि निशा बाहर की नहीं है। यह मेरे घर की बहू है।" ललिता ने इस बार जबान खोली। यह बात सुनते ही पुष्कर तमककर बाहर चले गए। निशा क्षण भर ललिता को देखती रही। उसको अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। लेकिन, न जाने क्यों अनायास ही उसकी आंखें भर आईं। भावावेश में उसके होंठ कांपने लगे। वह कुछ बोलना चाहती थी, किन्तु अप्रत्याशित प्रसन्नता के कारण मुख से स्वर फूटने की बजाय उसकी आखों से अश्रुधारा बहने लगी। रुदन उसके होंठों पर आकर रुक गया। ललिता ने मुस्कराकर निशा को देखा और अपने आंचल से उसकी आंखों के आंसू पोछते हुए बोली—"मैंने ज़िन्दगी में एक ही पाप किया है, जिसका अब प्रायश्चित्त करना चाहती हूं।" निशा के भावोद्रेक का बांध टूट गया। वह दोनों हाथों से अपना मुंह ढक कर रोने लगी। ललिता ने उसे खींचकर अपने कलेजे से लगा लिया।

विपत्ति अकेले नहीं आती। जब दुर्दिन घेरता है, आस-पास का वातावरण और मार्ग भी अवरोधक बन जाता है। राम को दो हफ्ते बाद काम पर जाना था, लेकिन मुख्यालय से सूचना मिली कि बांग्ला देश की स्थिति नाजुक है। वहां जय या क्षय की स्थिति आ पहुंची है। इसलिए उसे तुरंत करीमगज के लिए रवाना हो जाना है। राम एक अनुशासनबद्ध संगठन का सदस्य था। आदेश का उल्लंघन वह कर नहीं सकता था। तभी ललिता के बड़े भाई

मुकेश भी आ पहुंचे थे। सब की राय हुई कि राम के सामने केवल कर्तव्य की ही चुनौती नही है, बल्कि उसकी देशभक्ति भी कसौटी पर है, इसलिए उसे द्वन्द्व मे न पड़कर अपने काम पर रवाना हो जाना चाहिए। मुकेश ने आश्वासन देते हुए कहा—"मैं आ गया हूं बेटे, तुम्हे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही है। तुम निश्चिन्त होकर यहां से जाओ।"

राम के चले जाने के बाद स्थिति सुलझने की बजाय उलझती ही गई। पुष्कर ने अपने पुत्र लालनारायण से मिलकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि ललिता को दिल्ली का निवास छोड़ना पड़ा। सरकारी घोषणा के बाद प्रेस वालों ने भी कह दिया कि अब वह अधिक दिनों तक फर्म के मकान में ललिता को रहने की अनुमति नही दे सकते। निदान हीरामन को छात्रावास में रख दिया गया। ललिता चाहती थी कि वह किराए का कोई अच्छा-सा मकान लेकर, तब तक दिल्ली में ही रहे, जब तक कि हीरामन अपनी पढ़ाई पूरी नही कर लेता। ललिता को आशा थी कि राम जल्दी ही वापस आ जाएगा। उसे यह भी विश्वास था कि उसके पति एक न एक दिन अवश्य लौट आएंगे। लेकिन, उसकी इस योजना में कोई व्यक्ति मददगार सिद्ध नही हुआ। यहां तक कि मुकेश ने भी एक दिन समझाते हुए कहा, "आखिर तुम्हे एक न एक दिन राजदेव के घर रतनपुर जाना ही होगा। वही उनकी जन्मभूमि है। वही तुम्हारा तीर्थ भी है। तुम्हे यथार्थ से भागना नही चाहिए। पुष्कर जी और उनके बाल-बच्चों से तुम्हारा खून का रिश्ता है। अन्त मे वे लोग ही तुम्हारे काम आएंगे। वे लोग तुम्हारे शत्रु नही है। उन पर भरोसा रखो और गाव जाकर पैतृक जमीन की देखभाल करो।"

मुकेश के आने पर ललिता को बहुत आशा बंधी थी। ललिता ऐसे भंवर-जाल में जा फंसी थी कि उसके लिए तिनके का सहारा भी बहुत था। मुकेश को देखते ही ललिता को लगा कि अब वह निश्चय ही दुःख के दिन पूरे कर चुकी है। लेकिन, जब मुकेश ने भी उसे उसी राह पर ला खड़ा कर दिया, जो राह पुष्कर द्वारा बनाए गए दल-दल की ओर लिए जा रही थी, तब वह निरुपाय और निराश हो गई। उसने कातर दृष्टि से निशा की ओर देखा। निशा अवरुद्ध स्वर मे बोली, "मेरे पास बहुत बड़ी कोठी है। लेकिन, उस कोठी मे मैं स्वयं भी नही रहना चाहती। फिर आपको कैसे ले जाऊं? मालूम नही क्यों, ईश्वर हम सबको वही धकेल रहा है, जहां से हमने जीवन शुरू किया था। चलिए, मैं भी आपके साथ गांव चलूंगी। यदि वहां समय अनुकूल न

हुआ तो मेरी कोठी है ही। फिर लोग उंगली नहीं उठा पाएंगे।"

उनके गांव पहुंचते ही एक हंगामा शुरू हो गया। शुरू में तो किसी ने खुलकर कुछ नहीं कहा लेकिन, भीतर-भीतर एक चर्चा चल पड़ी कि राजदेव की पत्नी ने वेश्या को अपनी बहू बना लिया है। निशा लगभग सत्ताइस साल की हो गई थी। उसके चेहरे पर पहले से भी अधिक रूप निखर आया था। उसकी देह-यष्टि अधिक सुगठित, सुगढ़ और मोहक बन गई थी। उसकी बड़ी-बड़ी सलोनी आंखों में विषाद की जगह फिर से चांचल्य थिरकने लगा था। उसके होंठों पर कारुणिक मुस्कराहट की जगह असीम उल्लास का आभास उद्‌भासित रहता था।

गांव वाले, विशेषकर गांव की औरतें, निशा के इस रूप को देखकर जली मरती थीं। एक दिन गांव की एक महिला ने निशा को सुनाते हुए दूसरी महिला से कहा, "कई घरों को बर्बाद करके भी इसे संतोष नहीं हुआ! कुलक्षिणी!" कुछ दिनों के बाद निशा पर सीधा वाक्-प्रहार होने लगा। ललिता बीच में आती तो उसे भी व्यंग्य-बाण झेलना पड़ता। और तो और, एक दिन पुष्कर की पत्नी ने ही ललिता से कह दिया, "जैसे निशा के पांव हैं, वैसे ही तुम्हारे भी। इस घर में तुमने पांव रखा भी नहीं था कि तभी तुम्हारी सास चल बसी। तुम्हारे पति दर-दर की ठोकरें खाते रहे और अन्त में इस धराधाम से सिधार गए। तुम्हारे ऐसे संस्कार हैं, तभी तो तुम्हें निशा को बहू बनाने का विचार आया।"

इन नाटकों में पुष्कर की विचित्र भूमिका थी। उनकी दृष्टि राजदेव की संचित निधि पर टिकी हुई थी। वे राजदेव के दफ्तर जाकर कागज वगैरह तैयार करवा आए थे। प्रेस के मैनेजर ने कहा था कि बम्बई से मंजूरी आते ही एक लाख पन्द्रह हजार का ड्राफ्ट गांव के पते पर भेज दिया जायगा। उस ड्राफ्ट की प्रतीक्षा में पुष्कर धीरजपूर्वक ललिता को सहारा देने का अभिनय करते जा रहे थे। ललिता या निशा के विरुद्ध कोई आवाज उठाता तो वह बड़े जोर से उसका प्रतिवाद करते। एक दिन तो उन्होंने इस अभिनय के क्रम में अपनी पत्नी को डांटा ही नहीं, बल्कि वे उसकी बांह पकड़कर खींचते हुए उसके कमरे तक कर आये और ललिता के पास वापस आकर बोले—"इन जाहिलों की बात पर ध्यान न देना। इन लोगों का दिमाग सड़ गया है। दर-असल गांव के लिए यह नई घटना है, इसीलिए ये लोग निशा को या तुम्हें

स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाएंगे।"

निशा जब गांव से गई थी, तब वह भोली-भाली, अबोध, अपढ बालिका जैसी थी। दिल्ली की जिन्दगी ने उसमें संघर्ष झेलने का साहस पैदा कर दिया था। तरह-तरह के अनुभवों ने उसमें स्थिति को समझने और मनुष्य के स्वभाव को परखने की बुद्धि उत्पन्न कर दी थी। आतंक और आशंकाओं से भरे-पूरे जीवन को जीते-जीते निशा में सहज ही सतर्कता और प्रत्युत्पन्न मति जाग्रत हो गई थी। इसलिए ज्यों ही संचित निधि का ड्राफ्ट मिला, निशा ने ललिता से कहा, "मां, आपको तो विश्वास है कि बाबू जी जीवित हैं?"

"हां बेटी, शव का जो खण्ड आया था, वह उनका हो ही नहीं सकता। कोट बेशक उन्हीका था। यदि वे हवाई जहाज से गिरकर जल गए, तो कोट कैसे बचा रह गया? मुझे पक्का विश्वास है कि वे जीवित हैं और एक न एक दिन ज़रूर वापस आएंगे।"

"बांग्ला देश की लड़ाई बन्द हो गयी है। आपके बड़े बेटे भी निश्चित रूप से हफ्ते दो-हफ्ते मे यहां आ पहुचेंगे। ऐसी दशा मे सवा लाख रुपये का ड्राफ्ट चाचा जी को सौंपना उचित नहीं होगा। आपको कुछ दिन प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

ललिता ने गौर से निशा को देखा और वह मुस्कराकर बोली, "तुम्हें तो मैं अबोध समझती थी, लेकिन, तुम्हारी इस होशियारी के आगे हम लोगों का यहां रहना कठिन हो जायगा। पूरे गांव में केवल बड़े भाई साहब ही ऐसे हैं, जो हमारी रक्षा करने के लिए उठ खड़े होते हैं। ड्राफ्ट का रुपया यदि उन्हे नहीं दूंगी तो वे भी हमारे विरुद्ध बन जायेंगे।"

"यह सही है कि ड्राफ्ट न देने से यहां रहना कठिन हो जायगा, लेकिन यदि ड्राफ्ट आपने दे दिया तो हम लोग यहां एक दिन भी नही टिक पायेंगे। आप खूब समझती हैं कि ड्राफ्ट के कारण ही चाचा जी की सहानुभूति हम लोगों के साथ है।"

"लेकिन, अब यह ड्राफ्ट मैं कब तक रोके रख सकती हूं? बड़े भाई साहब अपनी पेंशन लेने पटना गये हुए हैं। परसों लौटते ही वे ड्राफ्ट मांगने आयेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगी?"

"यह ड्राफ्ट मुझे दे दीजिए। चाचा जी जो नाटक कर रहे हैं, उस नाटक के अनेक पात्र हैं और कई चरित्र भी। कुछ चरित्र ऐसे हैं, जो भीतर से बहुत अच्छे हैं, किन्तु चाचा जी के भय से वे बाहरी तौर पर बुरे बन गए हैं। ऐसे ही एक चरित्र से मुझे मालूम हुआ है कि हम लोगों के खिलाफ महिलाएं या गांव

वाले जो कुछ बोला करते हैं, उसके पीछे चाचा जी का ही हाथ है। यह ड्राफ्ट मैं आज ही रजिस्ट्री से हीरामन जी के पास भेज देती हूं। चाचा जी से कह दिया जायगा कि ड्राफ्ट हीरामन जी के नाम से था।"

ललिता ने चुपचाप ड्राफ्ट निशा को दे दिया।

जिस परिणाम की आशंका थी, वही हुआ। पुष्कर ने आते ही ललिता से ड्राफ्ट मांगा और जब उन्हें मालूम हुआ कि ड्राफ्ट दिल्ली हीरामन के पास भेज दिया गया है, तो वह आग-बबूला हो गए। तुरन्त उनका मुखौटा उतर गया। वह दांत पीसते हुए बोले—

"तुम लोग मेरी आंखों में धूल झोंकना चाहती हो! तमाम कागजात पर तुम्हारा नाम था, फिर ड्राफ्ट हीरामन के नाम का कैसे बन गया? यह हो नहीं सकता। तुम दोनों मक्कार हो। मैं आज ही लालनारायण को तार देता हूं कि वह हीरामन को ड्राफ्ट सहित पकड़कर यहां ले आए।" यह कहकर बड़ी तेजी के साथ वे ललिता के कमरे से बाहर चले गए। ललिता ने सुना, पुष्कर आंगन पार करते-करते भद्दी-भद्दी गालियां ललिता और निशा को दे रहे थे। ललिता के चेहरे पर घबराहट परिलक्षित हो रही थी, लेकिन निशा बैठी-बैठी मुस्करा रही थी।

दिन का तीसरा पहर उतरते-उतरते गांव के कई लोग ललिता के घर के बाहर इकट्ठे हो गए। ललिता ने सुना, गांव वालों में से कोई कह रहा था, "निकालो उन औरतों को घर से बाहर। गांव में यह अनाचार नहीं चल सकता।" दूसरा बोल उठा था, "इन दोनों औरतों को मारकर पोखर में डाल दिया जाय। ये दोनों समाज के लिए कलंक हैं।" तीसरे ने कहा, "पुष्कर यदि उन औरतों को घर से बाहर नहीं निकालते तो हम घर में ही आग लगा देंगे।"

ललिता यह धमकियां सुनते ही सहम उठी। उसने निशा की ओर घबराकर देखा। निशा बैठी-बैठी मुस्करा रही थी। ललिता की समझ में निशा की मुस्कराहट का रहस्य समा नहीं पाया। वह पूछ बैठी, "अब क्या होगा? मैं तो जलकर कष्ट से मुक्त हो जाऊंगी लेकिन, निवेदिता और हीरामन की देख-भाल कौन करेगा? निशा, मेरी बात मानो और तुम यहां से किसी तरह निकल भागो। तुम बच रहोगी तो मैं शांतिपूर्वक मर सकूंगी।"

"ऐसा कुछ नहीं होगा मां! ड्राफ्ट तुम्हारे नाम से है। जब तक उसे भुना नहीं लिया जाता, तब तक पुष्कर चाचा तुम्हें मरने नहीं देंगे। बाहर जो कुछ

बोला जा रहा है, उसकी रचना चाचा जी ने स्वयं की है, ताकि हम दोनों घबराकर आत्म-समर्पण कर दें।" बाहर से पुष्कर की आवाज सुनाई पड़ी। वे लोगों को शान्त करने की कोशिश में कह रहे थे, "आप लोग शान्त रहिए। मैं आप लोगों से बाहर नहीं हूं। मुझे एक हफ्ते का समय दीजिए। मैं इन दोनों को दिल्ली पहुंचा आऊंगा।" निशा यह बात सुनकर फिर मुस्कराने लगी।

इस तरह का नाटक लगभग रोज ही होने लगा। आठवें रोज हीरामन को लेकर लालनारायण आ पहुंचा। पुष्कर ने बाहर ही हीरामन से मालूम कर लिया कि ड्राफ्ट वह अपने साथ लेता आया है या नहीं। जब हीरामन ने हामी भर दी तब उनकी बांछें खिल गईं।

उन्होंने बड़े प्यार से हीरामन की अगवानी की।

दिल्ली पहुंचते ही राजदेव को मालूम हो गया कि उनकी पत्नी को मजबूरन मकान छोड़ना पड़ा। हीरामन छात्रावास में रहता है और प्रेस के मैनेजर ने उनके संचित निधि की रकम का ड्राफ्ट गांव भेज दिया है। राजदेव हवाई अड्डे से सीधे हीरामन के छात्रावास पहुंचे, जहां उन्हें बताया गया कि हीरामन अपने चचेरे भाई लालनारायण के साथ गांव चला गया है। लालनारायण के यहां उमेश से उनकी भेंट हो गयी। वह आउट हाउस में बैठा शराब पी रहा था। राजदेव को देखते ही उमेश घबराकर उठ खड़ा हुआ, "आप चाचा जी! आप जीवित हैं! यहां तो लोगों ने आपका क्रिया-कर्म भी कर दिया। चाची बार-बार कहती रहीं कि आप जीवित हैं, लेकिन पुष्कर चाचा ने उन्हें विधवा बनने पर मजबूर कर दिया…।"

उमेश नशे में था। राजदेव को सही-सलामत देखकर वह भावावेश से भर उठा। भावावेश में ही उसने ललिता की सारी कथा राजदेव को सुना दी। अपने मालिक लालनारायण और पुष्कर के षड्यन्त्र का भी भण्डाफोड़ कर दिया।

राजदेव ने जीवन के उतार-चढ़ाव देखे थे। उन्होंने जीवन भर क्षमा करना सीखा था। कभी उन्होंने किसी से प्रतिशोध नहीं लिया था। उनका विश्वास था कि मनुष्य कर्म करने भर के लिए जिम्मेवार है, फल ईश्वर के अधीन है, इसलिए लालनारायण के तमाम दुर्गुणों और गैर-कानूनी काम की जानकारी रखते हुए भी उन्होंने उसे सजा देने की कल्पना कभी नहीं की। उनकी धारणा थी कि अच्छे कर्म का फल हमेशा अच्छा होता है और बुरे कर्म का फल बुरा।

वाले जो कुछ बोला करते हैं, उसके पीछे चाचा जी का ही हाथ है। यह ड्राफ्ट मैं आज ही रजिस्ट्री से हीरामन जी के पास भेज देती हूं। चाचा जी से कह दिया जायगा कि ड्राफ्ट हीरामन जी के नाम से था।"

ललिता ने चुपचाप ड्राफ्ट निशा को दे दिया।

जिस परिणाम की आशंका थी, वही हुआ। पुष्कर ने आते ही ललिता से ड्राफ्ट मांगा और जब उन्हें मालूम हुआ कि ड्राफ्ट दिल्ली हीरामन के पास भेज दिया गया है, तो वह आग-बबूला हो गए। तुरन्त उनका मुखौटा उतर गया। वह दांत पीसते हुए बोले—

"तुम लोग मेरी आंखों में धूल झोंकना चाहती हो! तमाम कागजात पर तुम्हारा नाम था, फिर ड्राफ्ट हीरामन के नाम का कैसे बन गया? यह हो नहीं सकता। तुम दोनों मक्कार हो। मैं आज ही लालनारायण को तार देता हूं कि वह हीरामन को ड्राफ्ट सहित पकड़कर यहा ले आए।" यह कहकर बड़ी तेजी के साथ वे ललिता के कमरे से बाहर चले गए। ललिता ने सुना, पुष्कर आगन पार करते-करते भद्दी-भद्दी गालियां ललिता और निशा को दे रहे थे। ललिता के चेहरे पर घबराहट परिलक्षित हो रही थी, लेकिन निशा बैठी-बैठी मुस्करा रही थी।

दिन का तीसरा पहर उतरते-उतरते गाव के कई लोग ललिता के घर के बाहर इकट्ठे हो गए। ललिता ने सुना, गांव वालों में से कोई कह रहा था, "निकालो उन औरतों को घर से बाहर। गांव में यह अनाचार नहीं चल सकता।" दूसरा बोल उठा था, "इन दोनों औरतों को मारकर पोखर में डाल दिया जाय। ये दोनों समाज के लिए कलंक है।" तीसरे ने कहा, "पुष्कर यदि उन औरतों को घर से बाहर नहीं निकालते तो हम घर में ही आग लगा देंगे।"

ललिता यह धमकियां सुनते ही सहम उठीं। उसने निशा की ओर घबराकर देखा। निशा बैठी-बैठी मुस्करा रही थी। ललिता की समझ में निशा की मुस्कराहट का रहस्य समा नहीं पाया। वह पूछ बैठी, "अब क्या होगा? मैं तो जलकर कष्ट से मुक्त हो जाऊंगी लेकिन, निवेदिता और हीरामन की देखभाल कौन करेगा? निशा, मेरी बात मानो और तुम यहां से किसी तरह निकल भागो। तुम बच रहोगी तो मैं शातिपूर्वक मर सकूंगी।"

"ऐसा कुछ नहीं होगा मां! ड्राफ्ट तुम्हारे नाम से है। जब तक उसे भुना नहीं लिया जाता, तब तक पुष्कर चाचा तुम्हे मरने नहीं देंगे। बाहर जो कुछ

बोला जा रहा है, उसकी रचना चाचा जी ने स्वयं की है, ताकि हम दोनों घबराकर आत्म-समर्पण कर दें।" बाहर से पुष्कर की आवाज सुनाई पड़ी। वे लोगों को शान्त करने की कोशिश में कह रहे थे, "आप लोग शान्त रहिए। मैं आप लोगों से बाहर नहीं हूं। मुझे एक हफ्ते का समय दीजिए। मैं इन दोनों को दिल्ली पहुंचा आऊंगा।" निशा यह बात सुनकर फिर मुस्कराने लगी।

इस तरह का नाटक लगभग रोज ही होने लगा। आठवें रोज हीरामन को लेकर लालनारायण आ पहुंचा। पुष्कर ने बाहर ही हीरामन से मालूम कर लिया कि ड्राफ्ट वह अपने साथ लेता आया है या नहीं। जब हीरामन ने हामी भर दी तब उनकी बाछें खिल गईं।

उन्होंने बड़े प्यार से हीरामन की अगवानी की।

दिल्ली पहुंचते ही राजदेव को मालूम हो गया कि उनकी पत्नी को मजबूरन मकान छोड़ना पड़ा। हीरामन छात्रावास में रहता है और प्रेस के मैनेजर ने उनके संचित निधि की रकम का ड्राफ्ट गांव भेज दिया है। राजदेव हवाई अड्डे से सीधे हीरामन के छात्रावास पहुंचे, जहां उन्हें बताया गया कि हीरामन अपने चचेरे भाई लालनारायण के साथ गांव चला गया है। लाल-नारायण के यहां उमेश से उनकी भेंट हो गयी। वह आउट हाउस में बैठा शराब पी रहा था। राजदेव को देखते ही उमेश घबराकर उठ खड़ा हुआ, "आप चाचा जी! आप जीवित हैं! यहां तो लोगों ने आपका क्रिया-कर्म भी कर दिया। चाची बार-बार कहती रहीं कि आप जीवित हैं, लेकिन पुष्कर चाचा ने उन्हें विधवा बनने पर मजबूर कर दिया...।"

उमेश नशे में था। राजदेव को सही-सलामत देखकर वह भावावेश से भर उठा। भावावेश में ही उसने ललिता की सारी कथा राजदेव को सुना दी। अपने मालिक लालनारायण और पुष्कर के षड्यन्त्र का भी भण्डाफोड़ कर दिया।

राजदेव ने जीवन के उतार-चढ़ाव देखे थे। उन्होंने जीवन भर क्षमा करना सीखा था। कभी उन्होंने किसी से प्रतिशोध नहीं लिया था। उनका विश्वास था कि मनुष्य कर्म करने भर के लिए जिम्मेवार है, फल ईश्वर के अधीन है, इसलिए लालनारायण के तमाम दुर्गुणों और गैर-कानूनी काम की जानकारी रखते हुए भी उन्होंने उसे सजा देने की कल्पना कभी नहीं की। उनकी धारणा थी कि अच्छे कर्म का फल हमेशा अच्छा होता है और बुरे कर्म का फल बुरा।

लालनारायण जैसा करेगा, वैसा भरेगा।

आज उनकी तमाम मान्यताएं एवं धारणाएं एक प्रश्न-चिन्ह बनकर उन्हें बेचैन करने लगी। आखिर ललिता को किस बात की सजा मिल रही है! उसने पराये को अपना समझा। सबकी सेवा-सहायता की। जो भी ललिता के पास आया, उसे उसने निष्काम भाव से प्यार से आप्लावित कर दिया। उसने कभी अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं की। दूसरों की सेवा में अपने पैसे को पानी की तरह बहाया। इस पुण्य का फल उसे क्या मिला? और यह लालनारायण और इसका बाप?...'

राजदेव वहां से सीधे अपने कार्यालय पहुंचे। कार्यालय में उनके आ पहुंचने की सूचना मिल चुकी थी। लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। सभी कर्मचारियों और अधिकारियों ने उन्हें प्यार और सहानुभूति से अभिभूत कर दिया।

मैनेजर से उन्होंने विस्तारपूर्वक जानकारी ली कि किस प्रकार पुष्कर और उनके बेटे लालनारायण ने उनकी संचित निधि का भुगतान करवाया। इसी सिलसिले में उन्हें मालूम हुआ कि इस योजना के पीछे उनके भाई का उद्देश्य केवल रुपया प्राप्त कर लेना था। यदि वे लोग संचित-निधि के भुगतान पर जोर न देते तो ललिता कार्यालय के मकान में रह सकती थी। कार्यालय को कोई आपत्ति नहीं थी। लेकिन, लालनारायण ने कार्यालय के मालिकों पर जोर डलवाया। ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी गई कि मालिकों को लगा, राजदेव जी की विधवा को तत्काल संचित निधि का रुपया दे देना चाहिए।

"लेकिन, आप चिन्ता मत कीजिए। संचित निधि का ड्राफ्ट रद्द करने के लिए मैं अभी बैंक को लिख देता हूं और फोन भी कर देता हूं। आप हमारे दैनिक के प्रधान संपादक थे और आज भी हैं। मुख्य समस्या तो भाभी जी को यहां तक सुरक्षित ले आने की है।"—मैनेजर ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

राजदेव ने जवाब दिया, "मैं आज ही गांव जाना चाहता हूं।"

ट्रेन से जाने में काफी समय लग जायगा। पटना के लिए वायुयान कल सुबह ही आपको मिल पायेगा। वहां से पटना और मुजफ्फरपुर आप वायुयान से जाएं तो शाम होने से पहले ही घर पहुंच जाएंगे।"

"ठीक है, ऐसा ही कार्यक्रम बनाना होगा। इस बीच लालनारायण के प्रति जो कर्तव्य बहुत पहले पूरा कर लेना चाहिए था, उसे आज सम्पन्न कर दूंगा।"

तभी टेलीफोन की घन्टी बज उठी। मैनेजर ने उधर की आवाज सुनकर राजदेव को प्रसन्नतापूर्वक फोन देते हुए कहा, "एक और खुशखबरी आर स्वर्ग

सुन लीजिए। राम दिल्ली पहुच गये है।" राजदेव ने रिसीवर कान से लगा लिया। सचमुच राम स्वयं फोन पर दिल्ली से ही बात कर रहा था। राजदेव ने राम को प्रेस मे आने के लिए कहा।

रतनपुर गाव मे राजदेव के घर के आगे डेढ़-दो सौ आदमी खड़े शोरगुल मचा रहे थे। एक किनारे औरतें भी झुण्ड बाध कर खड़ी थीं। उन औरतों की तीखी आवाज शोरगुल को बेधती हुई दूर निकल जाती थी। हीरामन घर के मुख्य दरवाजे को दोनों हाथ से घर कर खड़ा था और लालनारायण उसे दरवाजे से खीचकर अलग करने की कोशिश मे लगा हुआ था। इस खींचतान मे लालनारायण कई बार हीरामन से झटके खाकर दूर जा गिरा था।

अचानक पुष्कर की शह पाकर भीड़ मे से छ-सात आदमी दरवाजे की तरफ बढ़े, तभी पीछे से आवाज आई, "मोटरगाडी आ रही है।" सबकी नजरें पीछे की ओर मुड़ गईं। सचमुच एक मोटर-गाड़ी गाव की कच्ची सड़क पर धूल उडाती हुई बढी चली आ रही थी। दरवाजे की ओर बढ़ने को उद्यत लोग सहमकर खड़े रह गये। भीड़ मे यत्र-तत्र दरारें पड़ गईं। गाव मे मोटर गाडी का आना सामान्य बात नही होती। उस समय स्थिति ऐसी थी कि कौतूहल के साथ-साथ लोगो मे डर भी समा गया कि कही पुलिस न हो।

मोटरगाड़ी भीड़ के बिल्कुल पास आकर रुकी। सबसे पहले उसमें से उमेश को उतरते देखकर भीड़ का भय दूर हुआ, कि तभी राजदेव बैसाखी के सहारे बाहर निकल आये। भीड़ भौचक देखती रह गयी। राजदेव धीरे-धीरे भीड़ की ओर बढ़ते रहे। बहुतों को अपनी आखो पर विश्वास नही हो रहा था। भीड़ मे ऐसा सन्नाटा छा गया, जैसे लोगो को आसन्न मृत्यु का ज्ञान प्राप्त हो गया हो। सभी ने भयमिश्रित कौतूहल से देखा, वही राजदेव का गरिमामय मुख-मडल! अभिव्यक्ति से भरी हुई आखें! वृषभ-कन्ध, जिसके नीचे दाहिनी तरफ बैसाखी। होठो पर अत्यधिक गाम्भीर्य, भवें कुछ चढी हुई, जिन्हें देखते ही भीड़ रास्ता देती जाती थी।

अपने पिता को देखते ही हीरामन दौड़ पड़ा। वह भूल ही गया कि दरवाजे पर मा और भाभी की सुरक्षा के लिए उसका लौहस्तम्भ की तरह खड़ा रहना जरूरी था। उसे लगा कि अब दरवाजे की ओर बढ़ने की किसी में हिम्मत नही होगी। राजदेव ने अपने बेटे को अपने पाव से उठाकर गले से लगा लिया और बायां हाथ उसके कन्धे पर रखकर वे धीरे-धीरे घर की देहरी

पर चढ़ गये। फिर उन्होंने घूमकर भीड़ की ओर देखा। भीड़ कुछ देर तक सहमी खड़ी रही कि तभी लालनारायण ने ऊंची आवाज में कहा—"चाची ने काल-गर्ल निशा को बहू बना लिया है। गांव वालों का कहना है कि उस कलंकिनी को वे बर्दाश्त नहीं कर सकते।"

राजदेव ने लालनारायण की ओर न देखकर, भीड़ पर सरसरी नजर डालते हुए कहा, 'गांव वालों का सोचना सही है। कलंक को तरजीह देने का अर्थ समाज में कैंसर पैदा करना है। कैंसर का कोई इलाज नहीं है। उसे काट कर फेंक देना चाहिए। प्रश्न यह है कि समाज का कलंक कौन है?"

राजदेव का प्रश्न सुनकर भीड़ खामोश रही, जिसे देखकर पुष्कर का मुंह सूखने लगा। लालनारायण ने अपने पिता की स्थिति भांप ली और कहा, "निशा कलंकिनी है। वह विधवा थी, फिर भी उसने उमेश से प्रपंच रचकर उससे शादी की।"

"निशा ने मेरे साथ कोई प्रपंच नहीं किया और मैंने उसससे शादी की भी नहीं। अपने भाई और गांव के पिशाचों के चंगुल से बचाने के लिए हम दोनों ने विवाह का नाटक किया था।"—उमेश ने गरजकर कहा। भीड़ में एक सनसनाहट और भुनभुनाहट फैलने लगी।

इस बार पुष्कर ने तमककर पूछा, "क्या निशा धनपति कपाड़िया की रखैल नहीं थी? क्या इसने प्रमोद पर भी डोरे नहीं डाले थे? क्या इसने राम के संग रास-रंग नहीं किया?"

राजदेव ने क्रुद्ध आंखों से अपने भाई की ओर देखा। उस आग्नेय दृष्टि को पुष्कर झेल नहीं सके और उन्होंने आंखें झुका लीं। राजदेव ने तीखे स्वर में कहा, "धनपत कपाड़िया अपनी आयु के अस्सी साल पूरे कर चुका था, जब उसकी भेंट निशा से हुई। अस्सी साल का वृद्ध व्यक्ति बाईस साल की लड़की को रखैल नहीं रख सकता। निशा को हम सबने मजबूर कर दिया था कि वह आत्महत्या कर ले, किन्तु ईश्वर ने उसे धनपत के हाथों में डालकर, आत्म-हत्या से ही नहीं, चारित्रिक हत्या से भी बचा लिया। और प्रमोद? मुझे आश्चर्य है कि वैसा सुशील और चरित्रवान लड़का आपका पुत्र बनकर कैसे पैदा हुआ? वह एक तेजस्वी और विद्रोही युवक था, जिसमें दलितों और पीड़ितों के लिए प्रेम था। उस प्रेम का प्रस्फुटन निशा में उसने होते देखा। निशा ने प्रमोद को नहीं फांसा, बल्कि प्रमोद ने निशा को द्विधा-ग्रस्त कर दिया। जहां तक राम का सम्बन्ध है, उसे मैं स्वीकार करता हूं। राम के साथ

निशा ने कोई गलत काम नहीं किया। बल्कि निशा ने तो राम को जीवन दिया, मार्ग-दर्शन दिया। निशा से समाज को न कभी कोई खतरा था और न है। हम सबने मिलकर निशा को आग से खेलने पर मजबूर किया। फिर भी वह बेदाग बनी रही, निष्कलुष रही। समाज का कलंक वह होता है, जो घर का घर बर्बाद करके भी चैन नहीं लेता। समाज का कलंक वह होता है, जो अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए दिन-रात अनैतिकता और कुकर्मों के जाल रचता रहता है। समाज का कलंक वह होता है जो अपनी समृद्धि के लिए गैर-कानूनी ढंग से धनोपार्जन को अपना लक्ष्य बना लेता है, जो नहीं सोचता कि उसके गैर-कानूनी और समाज-विरोधी कुकर्मों से देश को कितना बडा नुकसान हो रहा है। क्या आप लोग जानना चाहते है कि वह कलंक कौन है ?"—बोलते समय राजदेव की आंखें भीड़ के ऊपर से भटक रही थी। अचानक ही उन्होने देखा कि लालनारायण धीरे-धीरे पीछे हट रहा है। तभी उनकी नजर सामने से आती दो जीपों पर जा पड़ी. वे इसी घड़ी की प्रतीक्षा में थे। उन्होंने लाल नारायण को संबोधित किया—"अब तुम भाग नहीं सकोगे, लाल्न। पीछे नजर उठाकर देखो, पुलिस आ रही है। तुमने बहुत-सी लडकियों की अस्मत लूटी है, बहुतों का जीवन नष्ट किया है। दलाली करके काफी धनोपार्जन करने के बाद भी जब तुम्हे सन्तोष नहीं हुआ, तब लाइसेन्स और परमिट बेच-बेचकर तुमने सरकार को धोखे पर धोखे देने शुरू किये। उससे भी तुम्हारी और तुम्हारे बाप की भूख नहीं मिटी तो मेरी संचित निधि पर तुम दोनों की लोलुप दृष्टि जा पड़ी। तुम लोगों ने यह नहीं सोचा कि एक असहाय विधवा किस प्रकार जीवन यापन कर सकेगी ! सूद-भरना जमीन का डर दिखाकर तुम दोनों ने ललिता के सारे रुपये ऐंठ लेने की कोशिश की। मेरे पिता को मरे अठारह साल बीत चुके हैं। जाहिर है, जिसने भी मेरे हिस्से की जमीन अठारह साल पहले सूद-भरना के रूप मे ली होगी, वह जमीन अब कानूनन स्वतः मुक्त हो गई।"

दोनो जीप के रुकते ही सबसे पहले राम नीचे उतर पड़ा। लालनारायण ने भागने की कोशिश नहीं की। पुलिस इन्सपेक्टर ने उतरते ही भीड़ में खड़े लोगों से लालनारायण के बारे मे पूछा। उन लोगों ने इशारे से बता दिया कि लालनारायण कौन है।

ललिता ने अपने पति की आवाज सुन ली थी। प्रसन्नता के मारे वह फूट-फूट कर रोती हुई उठ खड़ी हुई। हर्षोन्मत होकर उसने निशा को गले से लगाते

हुए कहा, "मैंने कहा था न कि वे अवश्य आयेंगे ! सुन लो, यह आवाज उन्ही की है । वे आ गये ।"

ललिता बाहर की ओर दौडी । मुख्य द्वार भीतर-बाहर से बन्द था । भीतर की कुण्डी खोलने पर भी जब दरवाजा नहीं खुला, तो उसने जोर-जोर से दरवाजा पीटना शुरू किया । राजदेव ने स्वयं आगे बढ़कर बाहर से लगी हुई जंजीर खोल दी । दरवाजे के खुलते ही ललिता अपने पति के पांव पर गिर पड़ी । दायें पाव की ओर नजर पड़ते ही ललिता क्षण भर के लिए अवाक् रह गई । अचानक ही वह उठकर दायी बाहु के नीचे सहारा देती हुई बोली, "कोई बात नही—कोई बात नही । मैं तो तुम्हारी आवाज सुनने को तरस गई थी और तरस गई थी इस बात के लिए कि तुम कब आकर मुझे देखोगे ।"

दरवाजे पर ललिता और निशा के आते ही भीड़ छंटने लगी । लिहाज के मारे गांव के बुजुर्ग ललिता और राजदेव को एक साथ देखना नही चाहते थे । निशा पर नजर पड़ते ही राजदेव ने कहा, "राम के लिए तुम्हें प्रतीक्षा नही करनी पड़ेगी, वह भी आ गया है ।"

• • •

मुद्रक : मॉडर्न प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली

परिचय

श्री शिवसागर मिश्र का जन्म समस्तीपुर (बिहार) के ग्रामीण क्षेत्र में हुआ। बचपन एवं किशोरावस्था पढ़ाई-लिखाई के अतिरिक्त स्वाधीनता आन्दोलन और जेल-यात्रा में बीती। सन् १९५० के बाद, लगभग २३ वर्षों तक, आकाशवाणी में न्यूजरीडर, डिप्टी चीफ प्रोड्यूसर के पद पर रहते हुए भी, साहित्य की सेवा में सतत संलग्न रहे। सन् १९६५ और सन् १९७१ के भारत-पाक युद्ध में सीमान्त क्षेत्रों और युद्धस्थलों की रोमांचकारी एवं व्यापक यात्रा की। सम्प्रति रेलवे बोर्ड में राजभाषा एवं औद्योगिक प्रचार विभाग के निदेशक है।